धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये
अंक 138
पौष,
2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

लोक-संस्कृति अंक

महावीर मन्दिर में श्रीसीताराम विवाह समारोह की झाँकी

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया	- सम्पादकीय	3
2. मिथक, पुराण और लोकवार्ता	- डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी	6
3. लोकाचार पूजन और कुलदेवी-देवता	- विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक	11
4. उत्कलीय लोकसंस्कृति	- डॉ. ममता मिश्र 'दाश'	21
5. उत्तराखण्ड के लोक देवता	- डॉ. ललित मोहन जोशी	29
5. थारू जनजाति की लोकदेवी : 'सहोदरा'	-श्री रवि संगम	40
6. राजस्थान में लोकदेवी की अवधारणा	- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'	44
7. भारतीय लोक और रामचरितमानस	- डॉ. राधानंद सिंह	48
8. लोकगीतों में कालिदास की शकुन्तला	- श्री संजय गोस्वामी	59
9. ऋचीक मुनि और पुत्र शुन:शेप का वृत्तान्त	- डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता	67
10. पुस्तक-समीक्षा : शाश्वती गीता		71
11. महावीर मन्दिर समाचार (दिसम्बर, 2023ई.)		73
12. माता जानकी के उद्भव-स्थल, पुनौरा धाम, सीतामढ़ी		77
13. व्रत-पर्व, पौष, 2080 वि. सं.		79

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 138
पौष, 2080 वि. सं.
27 दिसम्बर, 2023-
25 जनवरी, 2024ई.

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com
Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 137, अग्रहायण, 2080 वि.सं.

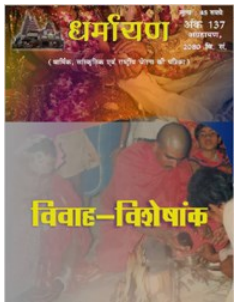

संमाननीय श्री भवनाथ झा जी,
संपादक, धर्मायण

सादर नमस्कार, आपके द्वारा भेजा हुआ 'धर्मायण' पत्रिका का 'विवाह विशेषांक' मैंने पढा। अंक के लिए कोई टिप्पणी प्रस्तुत करने से पहले इस बात स्वीकार करना औचित्यपूर्ण समझता हूँ कि हिंदी भाषा में लिखे साहित्य का मेरा बहुत अल्प अध्ययन है। मैं स्वीकार करता हूँ कि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखी हुई संभवतः यह प्रथम पत्रिका मेरे पढ़ने में आयी।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना जिसका मुद्रालेख है, ऐसा इस पत्रिका का नाम ही अन्वर्थक है। जैसे 'रामायण' हमें राम की ओर ले जाता है, जैसे 'उत्तरायण' में सूर्य की उत्तर दिशा में गति होती है। ऐसे ही 'धर्मायण' माने सज्जनों की धर्म की और गति कराने वाला विचार पत्र।

धर्मायण के विशेषांक के लिए आपने बहुत अच्छा और उपयुक्त विषय चुना है। मेरे विचार से भारतवर्ष या भारतीय संस्कृति जिसे हम वैदिक संस्कृति कह सकते हैं, उसके प्रमुख आधार-स्तंभों में से सबसे महत्त्वपूर्ण आधार हमारी 'विवाह संस्था' है। आपके इस अंक में समाविष्ट किए गए प्रत्येक आलेख में वैदिक संस्कृति में निरूपित 'विवाह संस्था' का बहुत अच्छे से और सरल शब्दों में हमारे सत्शास्त्रों का संदर्भ लेकर बहुत ही अभ्यासपूर्ण आलेख सभी विद्वानों ने लिखे हैं। इस विशेषांक में समाविष्ट किए गए प्रत्येक आलेख की विचारणा या इसके ऊपर में टिप्पणी कर सकूँ इतना गहन अध्ययन मेरा नहीं है। फिर भी धर्मायण का 'विवाह विशेषांक' पढ़ कर इतना जरूर कहना चाहता हूँ कि इस विशेषांक में समाविष्ट आलेखों में भारतीय संस्कृति मैं विवाह के विषय संबंधित सम्पूर्ण गरिमा समाविष्ट की गई है। सभी भारतीय हिन्दुओं का इससे अवगत होना ही चाहिए। हमारे राष्ट्र की अद्भुत विवाह संस्था को अगर हम नहीं सँभाल पाए, तो कतई हम विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रजाति नहीं बन सकते। इस स्थिति में श्रेष्ठ नागरिक बने बिना हम सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बना सकेंगे, यह बात मेरे हिसाब से संभव नहीं है। आपने इस विशेषांक को तैयार करने में कितनी समस्याओं

शेष पृ. 20 पर

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.—+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

धर्मायण का अग्रिम अंक **माघ मास** का होगा। इस मास में रामानन्दाचार्य का जन्म हुआ था। वे मध्यकाल के क्रान्तिकारी धरम सुधारक हुए हैं। उन्होंने आम लोगों से जुडकर श्रीराम भक्ति-परम्परा का आश्रय लेते हुए समाज को एक धरातल पर लाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। इधर सूचना तंत्र में प्रगति होने से नवीन सामग्री मिली है, अतः यह आवश्यक है कि राम भक्ति-परम्परा के नवोपलब्ध साहित्य पर विमर्श प्रस्तुत किया जाये। कुछ शोधकर्ताओं के आश्वासन पर हमने सन्त-साहित्य पर केन्द्रित अंक का प्रस्ताव दिया है।

विस्तार से– पृ. 5 पर

लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

लोक और वेद ये दो शब्द हम सहचर के रूप में व्यवहार करते हैं। वेद सम्पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान का रूप है तो लोक लौकिक ज्ञान को एकत्र समेट लेता है। इसका तात्पर्य है कि जो हम पुस्तकों में पढ़ते हैं, गुरु से सीखते हैं, वह वेद है तथा जो हम समाज में रहकर अपने चारों ओर की वस्तुओं को देखकर परम्परासे सीखते हैं, वह लोक है। इस प्रकार, ज्ञान के दो रूप हुए- लोक और वेद। आहार्य-ज्ञान 'लोक' है तथा पाठ्य -ज्ञान 'वेद' है, इन्हीं दोनों के संयुक्त रूप को 'लोक-वेद' कहा गया है।

आचार्य वामन ने काव्यालंकार सूत्र में लोक और शास्त्र का उल्लेख पृथक् रूप में कर लोक को परिभाषित करने का कार्य किया है। वे काव्य की उत्पत्ति के कारणों पर विचार करते हुए लिखते हैं- लोकशास्त्राद्यवेक्षणात्- लोक तथा शास्त्र के अवलोकन भी काव्य की उत्पत्ति का कारण है। अब आगे वे लोक को परिभाषित करते हैं- स्थावरजङ्गमात्मको लोकः- हमारे चारों ओर जो स्थावर और जंगम संसार है, वह लोक है। प्रकृति के अवलोकन से भी ज्ञान की वृद्धि होती है, वह भी लोक है। हम अपने समाज के बीच रहकर जो भाषा सीखते हैं वह हमारी लोकभाषा है, क्योंकि यह हम किसी पुस्तक में पढ़कर नहीं बल्कि लोक में रहकर सीखते हैं। अन्य भाषाएँ वेद हैं, जिनका व्याकरण तथा शब्दकोष पढकर हम उसका व्यवहार सीखते हैं।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि लोक के पास कौन-कौन-सी वस्तुएँ हैं? मैं समझता हूँ कि लोक के पास साहित्य, कला, (दृश्य एवं श्रव्य कला दोनों) संस्कृति, उपास्य देव, उपासना-विधि, सब कुछ है, जिनसे वे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। समाज को जोड़ने के लिए हमें उन लोक-परम्पराओं में भारतीय एकत्व को उभारना चाहिए। भलें 'लोक' एक सीमित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता हो पर उनमें अन्तःसम्बन्धों की खोज की जा सकती है। लोक के पास अपना ज्योतिष भी है। डाक, घाघ, भड्डरी, डंक बंगाल से राजस्थान तक व्याप्त हैं। आज हम उनके जन्मस्थान को लेकर हल्ला मचाते हैं कि वे हमारे हैं। क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि यह एक अवधारणा है जो व्यापक लोक में व्याप्त है।

सनातन परम्परा में लोकाचार की मान्यता रही है। मनुस्मृति ने इसे 'सदाचार' कहा है। अन्य स्मृतिकार तथा पुराणकार भी इसे धर्म के एक साधन के रूप में मान्यता दे रहे हैं।

भारत के हर क्षेत्र में ऐसे अनेक लोकाचार हैं, जो सीधे किसी न किसी धार्मिक मान्यता से जुड़े हैं। लोक की धारा निरन्तर गतिशील है। ऐसे अनेक धार्मिक कृत्य हैं जो केवल लोक परम्परा में हैं उनका शास्त्र में उल्लेख नहीं है।

लोकाचार की शास्त्रीय मान्यता का विवेचन सर्वप्रथम अपेक्षित होगा। मनु, तथा याज्ञवल्क्य ने इसके महत्त्व को लिखा है। पारस्करगृह्यसूत्र में भी 'लोकात्' लिखकर लोकाचार की मान्यता दी गयी है। यहाँ तक कि व्याकरण में पतंजलि ने लिंगनिर्णय में लोक को ही प्रमाण मान लिया है।

जी। महाभारत ने भी लोकसंग्रह की मान्यता दी है। महाभारत का कथन है-

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः। द्वितीयं धर्मशास्त्राणि तृतीयं लोकसंग्रहः॥

(महाभारत, कुम्भकोणम् संस्करण, 14.10.42)

गीता का कथन है-

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥

(गीता, 1.40)

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन। नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥

(गीता, 1.44)

अब कुलधर्म क्या है, इस पर मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं — कुलधर्मा असाधारणाश्च।

आनन्दगिरि ने अपनी टीका में लिखा — **वंशप्रयुक्ताश्च धर्माः।**

स्वामिश्री गोपालानन्दमुनि स्पष्ट करते हैं- **कुलधर्माः कुलपरम्परया समागताः स्वासाधारणा धर्माश्च।**

स्मृतिकार कात्यायन (बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक 84-85) का कथन है-

उत्कृष्टजातिशीलानां गुर्वाचार्यतपस्विनाम्॥

गोत्रस्थितिस्तु या तेषां क्रमादायाति धर्मतः। कुलधर्मं तु तं प्राहुः पालयेत्तं तथैव तु॥

लोकधर्म का यह भी एक रूप है।

आखिर 'लोक-प्रामाण्य' की पहचान कैसे हो, यह एक जटिल प्रश्न है। आज लोकाचार के नाम पर बहुत बेमानी हो रही है। अपनी मनमानी को भी लोग लोकाचार का रूप देने लगे हैं। यहाँ सबसे पहले हमें पारिवारिक 'मान', 'खोम' आदि के साथ लोकाचार को पृथक् करना होगा। किसी परिवार में यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु बृहस्पतिवार को हो गया है तो उस परिवार में बृहस्पति के दिन कोई शुभकार्य नहीं होगा, जब तक कि किसी बच्चे का या कम से कम पालतू जानवर का भी जन्म न हो जाये। बहुत क्षेत्रों में यह 'मान' रखा जाता है। यह पारिवारिक मान्यता है, लोकाचार नहीं।

लोकाचार एक परिवार का नहीं, समाज का होता है। किसी आचार का क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, उसकी प्राचीनता उतनी ही होगी। अतः लोकाचार की जो परिसीमा है उसे हमें खोजना होगा कि वह आचार एक परिवार तक सीमित है, एक गाँव, एक जाति, एक समुदाय, एक विशाल भूखण्ड तक आखिर कहाँ तक व्याप्त है? जितने बड़े क्षेत्रफल में वह व्याप्त होगा, उसे हम उतना ही प्राचीन मानेंगे। यही व्यापक तथा प्राचीन लोकाचार संस्कृति का निर्माण करता है।

लोक की यह धारा सतत प्रवाहित होती है। यह आदिकाल से आजतक अविच्छन्न रूप में चलती आ रही है, इसमें देश, काल तथा पात्र के अनुसार परिवर्तन-परिवर्द्धन होता है।

इसी लोक-संस्कृति को विभिन्न कालों में विद्वान् लिपिबद्ध करते हैं, जिन्हें हम आज शास्त्र कहते हैं। जैसे किसी नदी से एक घड़ा पानी भरकर उसे बंद कर रख दिया जाये तो वह शास्त्र हो जाता है। फलतः विभिन्न कालों में लिखे

गये ये ग्रन्थ तबतक हमारी परम्परा की पहचान कराने में असमर्थ होते हैं जब तक कि उनका निश्चित काल निर्धारित न हो जाये। इस अर्थ में 'शास्त्र' की अपेक्षा 'लोक' का महत्त्व बढ़ जाता है।

दूसरी बात है कि जितने ग्रन्थ लिख गये वे सभी आज हमारे पास उपलब्ध भी नहीं हैं। हमारे पास कोई ऐसी कसौटी नहीं है, जिससे हम यह निर्धारित कर सकें कि इतने ही शास्त्र लिखे गये। हमें नहीं पता कि कितने ग्रन्थ जल गये, बाढ़ में बह गये, कितने ग्रन्थ अभी सुरक्षित हैं पर प्रकाशित नहीं है। जो भी प्रकाशित हैं उनमें से कितने ग्रन्थों का हमने अध्ययन किया है? वे क्या हमारे क्षेत्र के हैं या अन्य क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं? इन ऊहापोहों की स्थिति में हमाके लिए लोक महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जो सतत अविच्छिन्न है। विगत शती से हमने 'लोक' को अवैदिक करार कर इसे खो दिया है।

लोक-देवताओं की भी यही स्थिति है। आम जनता से धर्म को जोड़ने के लिए लोकाचार पर विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। "लोकाचारात् स्मृतिर्ज्ञेया स्मृतेश्च श्रुतिकल्पनम्" की जो प्रक्रिया है उसे आज प्रचारित करना आवश्यक है। तभी हम पूरे समाज के साथ एक धरातल पर समरस प्रतीत होंगे। यह सामाजिक समरसता का कारक तत्त्व सिद्ध होगा। इसी उद्देश्य को लेकर धर्मायण का यह अंक प्रस्तुत है।

***

लेखकों से निवेदन

धर्मायण का आगामी माघ मास का अंक **सन्त-साहित्य** अंक के रूप में प्रस्तावित है। सन्त साहित्य पर अनेक प्रकार के कार्य हो चुके हैं, किन्तु अभी भी अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ मिल रहे हैं। ज सूचना तंत्र की प्रगति के कारण कई प्राचीन हस्तलेख सामने आये हैं, जिन पर कार्य करना समीचीन होगा। प्रसन्नता का विषय है कि नयी पीढ़ी के युवा वर्ग इस क्षेत्र में जागरूक हुए हैं। कुछ लेखकों ने स्वीकृति दी है कि वे इस नवोपलब्ध साहित्य पर प्रकाश देते हुए आलेख उपलब्ध करायेंगे। अतः विद्वानों से निवेदन है कि इस अंक हेतु प्रामाणिक स्रोतों से सामग्री प्रेषित करने का कष्ट करेंगे। हमें पूर्व में किए गये कार्यों के पिष्ट-पेषण से अधिक नवीन कार्य की ओर प्रेरित होना चाहिए। आज अनेक ऐसे हस्तलेख शोधकार्य हेतु इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं। यथा सम्भव हम आपको उपलब्ध करा सकते हैं। इस समूह के सभी विद्वान् लेखकों से निवेदन है कि महावीर मन्दिर पटना से प्रकाशित 'धर्मायण' पत्रिका के माघ मास के अंक हेतु सन्त-साहित्य पर केन्द्रित आलेख भेजें।

***

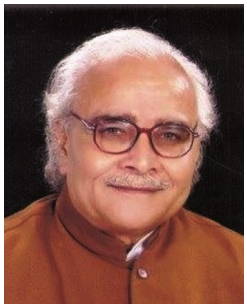

मिथक, पुराण और लोकवार्ता

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

पूर्व समन्वयक शोध परियोजना : लोक और लोकसंस्कृति : भारतीय सन्दर्भ में, जनपद सम्पदा, इंदिरागांधी राष्ट्रीय कलाकेंद्र, नई दिल्ली। सम्प्रति

दर्शन के अर्थ में लोकृ धातु से घञ् प्रत्यय कर लोक शब्द की निष्पत्ति वैयाकरणों ने मानी है। इस प्रकार जो दिखाई पड़ता है वह लोक है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण लोक है तथा जो शब्द प्रमाण शास्त्र है। शास्त्र के अन्तर्गत ही हम लिखित पुराणों को रख सकते हैं। लेखक की मान्यता है कि वह जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाला लोक है उसी के लिए मिथक शब्द का प्रयोग अंगेरजी के Myth शब्द को भारतीयकृत कर किया गया है। लेकिन, मिथक मिथ्या नहीं होता। लेखक ने माना है कि आज जो हम पुराण देखते हैं वह किसी प्राचीन काल का 'लोक' है। वही जब नवीकृत होता है तो पुराण बन जाता है। वह पुराण आख्यानात्मक ज्ञान की परम्परा है, इनकी गाथाओं का मूल स्रोत लोकजीवन है, जो सतत गतिमान है, वास्तविक है। इन लोक-गाथाओं का संकलन सूत जाति के लोगों ने किया, जो आज हमारे बीच पुराण के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हमें लोक को पढ़ना नहीं, देखना चाहिए, तभी हम लोक को समझ पायेंगे।

मिथक शब्द

जिस प्रकार अंग्रेजी शब्द 'ऐकेडमी' का अनुकूलन करके उसका 'अकादमी'- रूप हिन्दी ने स्वीकार कर लिया है, उसी प्रकार से अंग्रेजी के 'मिथ' में 'क' प्रत्यय लगा कर 'मिथक' शब्द भी हिन्दी में प्रचलित हो चुका है। मिथक को लेकर शताधिक शोध-निबन्ध और पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यह शब्द हिंदी-जगत को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की देन है। जब द्विवेदीजी से काशी के विद्वानों ने 'मिथक' शब्द की व्युत्पत्ति पूछी तो उन्होंने कहा- 'मिथ: अर्थात् पूरक, इसलिये मिथक।' अंग्रेजी में मिथ (Myth) शब्द का प्रयोग पहले देवी-देवताओं की गाथा के लिए होता था। हिंदी में 'मिथ' के लिए कल्पकथा, दंतकथा, पुराकथा, धर्मगाथा, पुराख्यान आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा था। यह निर्भ्रान्त है कि 'मिथक' शब्द मिथ्या से नहीं बना, मिथक मिथ्या नहीं होता है! मिथक लोक की अन्तश्चेतना में व्याप्त सत्य है।

पुराण और मिथक

मिथक 'पुराणतत्त्व' तो है, किन्तु 'पुराण' शब्द का पर्यायवाची नहीं हैं। यास्क ने अपने निरुक्त 3.19 में पुराण शब्द की व्युत्पत्ति **"पुरा नवं भवति इति पुराणम्।"** के रूप में की है- "पुराना नया हो जाता है, वह पुराण है।" 'पुराण' संस्कृत शब्द है और पारिभाषिक भी है।

इतिहास-पुराणानि पञ्चमं वेद उच्यते।

पुराण के पाँच लक्षण बतलाये गये हैं-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् चराचर जगत् की सृष्टि, पंचमहाभूत, इन्द्रिय, बुद्धि आदि तत्त्वों की उत्पत्ति, सूर्य-चन्द्र-अग्नि आदि वंशों का विस्तार, चौदह मनु और मन्वन्तर तथा राजवंशों एवं राजाओं का वर्णन।

सनातन-धर्म की परंपरा में अठारह-पुराण माने गये हैं- ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण- (उत्तर भाग - विष्णुधर्मोत्तर) वायु पुराण, (भिन्न मत से- शिवपुराण), भागवत पुराण (भिन्न मत से- देवीभागवत पुराण), नारद पुराण, मार्कण्डेयपुराण,अग्निपुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण, ब्रह्माण्डपुराण। जैन धर्म में चौबीस पुराण तीर्थकरों के नाम पर हैं, जिनमें तीर्थकरों के अलौकिक चरित्र हैं।

पुराण : ज्ञान की आख्यानात्मक-परंपरा

भारत की ज्ञान परंपरा या ज्ञानधारा आख्यानात्मक है, आख्यानात्मकता में व्याप्त है! यह आख्यानात्मकता सर्वात्मक है, मनुष्य मात्र की है, किसी परिधि में सीमित नहीं है! यह हमारे भीतर भी प्रवाहित हो रही है! वैसे यह परंपरा विश्व में यत्र-तत्र-सर्वत्र मिल जाती है जीवन और प्रकृति के तत्त्वबोध को मनीषियों ने किसी न किसी कथानक या आख्यान के रूप में व्यक्त किया है! उस जमाने में लिखित-अक्षर की परंपरा तो थी नहीं, वाचिक-परंपरा थी, इसलिए जीवन और प्रकृति के अनुभव और ज्ञान को किसी न किसी कहानी के रूप में गूँथ दिया है! इसीलिए पुराण के प्रति भारतीय लोकमानस की आस्था है! लोकजीवन पुराण से प्रभावित और प्रेरित होता है! पुराणों में भारत का हृदय और मस्तिष्क है।

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी सोवियत-रूस गये तो उन्होंने आचार्य वासुदेवशरण जी को पत्र लिखा कि रूस को भारत का क्या संदेश हो सकता है? तब 9-6-66 को आचार्य वासुदेव जी ने एक लंबी चिट्ठी लिखी। उसका एक वाक्य- *"यदि रूसी जनता हमारे मस्तिष्क और हृदय को निकट से जानना चाहे तो उसे पुराणों के चार लाख श्लोकों का साहित्य देखना चाहिये।"* यहाँ एक बात याद रहे कि वासुदेव जी मेरठ के आर्यसमाजी -परिवार से थे। उन्होंने पुराण पुस्तक भी लिखी थी।

पुराण-तत्त्व

पुराणगाथाओं का प्रचलन लोकजीवन में था और आज भी है । लोक जीवन से ही इन गाथाओं को संकलित करके 'पुराणों' की रचना की गयी और आज उन पुराणों की गणना शास्त्र के अन्तर्गत की जाती है । परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि जो पुराणगाथा लोकजीवन में है , वह वाचिक है और उसके विविध पाठ हैं। शास्त्र के रूप में लिखित पुराण और लोकजीवन में प्रचलित पुराणगाथा अलग-अलग हैं । 'पुराण' की परिभाषा ही अलग है। जो बुद्धिजीवी लोग हैं, वे लोक की धरती से दो गज ऊपर रहते हैं, वे 'पुराण' की किताब तो देख सकते हैं, लेकिन लोकजीवन में नहीं उतर सकते, उनकी शान का सवाल है, इसलिए 'पुराण' और 'पुराण-तत्त्व' का अन्तर समझना उनके वश की बात नहीं है।

'पुराणतत्व' के सवाल को लेकर एक प्रोफ़ेसर मुझसे कुछ अप्रसन्न से हो गये थे, वे बोले- शुद्ध लोकवार्ता पुराणतत्त्व से अलग नहीं की जा सकती है? मेरे लिए शुद्धलोकवार्ता नया मामला था। शुद्धलोकवार्ता क्या होती है? बोले- "जिसमें पुराणतत्व न हो!" मैंने कहा- "लोकवार्ता की किताब मत पढ़िये पहले आप लोकजीवन में उतरिये। तभी आप जान सकेंगे कि लोकमानस मिथकीय भाषा में ही

सोचता है, मिथकीय-भाषा में ही अभिव्यक्ति करता है।

पिछले दिनों ही फ़ेसबुक पर गुरु नानक की कथा आयी कि उन्होंने अमीर घर की रोटी को निचोड़ा तो जहर निकला और गरीब के घर की रोटी को निचोड़ा तो दूध निकला। अब रोटी को निचोड़ने से दूध या जहर निकलना मिथकीय अभिव्यक्ति है। लोक की अभिव्यक्ति में इस मिथकीय तत्त्व को भिन्न नहीं किया जा सकता। भले ही आज पुराण मुद्रित हो गये हैं किन्तु मूलत: तो यह वाचिक-परंपरा का साहित्य है, मुद्रित होने से वाचिक-परंपरा समाप्त नहीं हुई , वाचिक-परंपरा आज भी चल रही है। जितनी बार वह कहा सुना जाता है,उतनी ही बार उसका कायाकल्प हो जाता है,नया रूप, नया प्राण उसे हर बार मिल जाते हैं। वह नित नया बना रहता है। इसीलिये कहा जाता है- पुराणयुवति! पुराण के बिना न तो लोकमानस को समझा जा सकता है और न ही परिनिष्ठित साहित्य की ही व्याख्या की जा सकती है। पुराणतत्त्व को आधार बना कर शत-शत काव्य-नाटक-उपन्यास आदि लिखे गये हैं। सबसे पहला उदाहरण कामायनी है।

भाषा, मिथक और लोकवार्ता

मिथक लोकवार्ता का अभिन्न अंग है अथवा इसे यों कहा जा सकता है कि प्राचीन लोकवार्ता का दूसरा नाम मिथक है। अभिप्राय और मौखिक परम्परा दोनों में एक जैसे हैं। मिथक की रचना में लोकवार्ता के उन्हीं तत्वों का योग है। इसलिए मिथकशास्त्र के अध्ययन को लोकवार्ता से कभी अलग नहीं किया जा सकता, इसकी अतिलौकिक कथाएँ, इसके कथानक के रूप और यहाँ तक कि इसकी विशिष्ट घटनाएँ भी प्रचलित लोकवार्ता में विद्यमान रहती हैं। लोककथा या लोकगाथा और मिथक-कथा दोनों के कथातन्तु, कथारूढियाँ, परिवेश और पात्र एक जैसे ही हैं।

लोकमन की सिद्ध प्रकृति है कि वह लोक से अलौकिक की ओर चलती है। उसकी गति सीमा से असीम की ओर है। वह धरती पर सोता है लेकिन आकाश को देखता है, उसका मन सितारों में भ्रमण करता है। यदि कोई इसे कल्पना समझता है तो वह गलत नहीं समझता लेकिन इसके आगे की बात यह है कि कल्पना मनुष्य की अतुलनीय शक्ति है। कल्पना के सूत्रों से लोकमन ने मिथकों की रचना की है और उन मिथकों ने जीवन के यथार्थ की रचना की है।

दोनों की गति और दोनों का विस्तार तीनों लोकों में है अतल, वितल, पाताल से लेकर नागलोक, स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक तक इन गाथा और कथाओं का स्वदेश है। भीम नागलोक चला जाता है और अर्जुन स्वर्ग में जाकर इन्द्र के आधे आसन पर बैठ जाता है।नारद हैं, वे पृथ्वी से इन्द्र के स्वर्ग में भी चले जाते हैं और ब्रह्मलोक में भी चले जाते हैं, विष्णु के बैकुंठ में भी चले जाते हैं। वैकुंठपुरी के घोड़े नदी का पानी पीने आ जाते हैं।

लोकवार्ता में आल्हा, ढोला मारू, भरथरी, गोरखनाथ, जगद्देव जैसे पात्र भी है, किंतु अतिमानवीय चरित्र दोनों जगह हैं। सूरज, चन्दा, धरती, गाय, शेर, नाग, हाथी, हवा, दिशा, अग्नि, नारद, इन्द्र, ब्रह्मा, यमराज, वरुण, कुबेर, लोकपाल, दिग्गज, पांचों पंडा छटे नारायण श्रवणकुमार, बब्रावाहन, मोरध्वज, हरिश्चंद्र, नल-दमयंती, राम, हनुमान, सावित्री सत्यवान आदि एक जैसे ही पात्र हैं।

मोटिफ़ या अभिप्राय लोकवार्ता में भी हैं और माइथोलोजी अथवा पुराण-गाथाओं में भी हैं। दोनों की कथा-रूढ़ियाँ समान हैं कुंड में स्नान करने से पुरुष स्त्री बन जाता है और वृद्ध युवा बन जाता है मंत्र के आह्वान से देवता आ जाते हैं। शाप और वरदान दोनों जगह है। परलोक, पुनर्जन्म, योनिपरिवर्तन दोनों जगह है। दोनों जगह कल्पवृक्ष है जिसको छाया में बैठकर जो भी कुछ इच्छा करो, वही पूरी हो जाती है। अभिधा से

इनका अर्थ निकालना बुद्धि का पराभव है। दोनों में समुद्र की लहरें बोलती हैं, आंधी बोलती है, मेघ बोलते हैं। सिंह गाय से वार्तालाप कर लेता है तथा चींटी हाथी से संवाद कर लेती है। इसे लोकवार्ता शास्त्री सर्वसजीवत्ववाद कहते हैं और ये मानते हैं कि सर्व सजीवत्ववाद ही आत्मा के सिद्धांत का आदिम रूप है।

लोकवार्ता की ही तरह मिथ भी जनता की इच्छा अभिलाषा है। भाषा, मिथक और लोकवार्ता में बहुत सी समानताएँ हैं। जैसे भाषा का विकास लोकजीवन में होता है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता का विकास भी लोकजीवन में होता है। जैसे भाषा अपौरुषेय है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी अपौरुषेय हैं अर्थात् कोई नहीं बतला सकता कि किसने भाषा बनायी? किसने उसमें परिवर्तन किया? इसी प्रकार लोकवार्ता और मिथक की रचना किसने की और किसने विकास किया,यह भी कोई नहीं बतला सकता। जैसे भाषा परंपरागत होती है, उसी प्रकार मिथक तथा लोकवार्ता भी परंपरागत हैं। जैसे जीवन मे प्रवाह में भाषा में परिवर्तन होते हैं,,उसी प्रकार जीवन मे प्रवाह में मिथक तथा लोकवार्ता में भी परिवर्तन होते हैं। जैसे भाषा का अध्ययन हम तुलनात्मक, विकासात्मक, विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक, विवरणात्मक-प्रणालियों से करते हैं, वैसे ही मिथक और लोकवार्ता का अध्ययन भी इन प्रणालियों से किया जाता है। जैसे भाषा में शब्द और वाक्य की रचना, ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान होते हैं, उसी प्रकार मिथक और लोकवार्ता में कथारूढ़ि, मोटिफ motif, कथामानक type तथा आद्यबिंब archetype होते हैं। भाषाविज्ञान की सीमा वैखरीवाणी तक ही है किन्तु लोकवार्ता और मिथक को मध्यमा,पश्यन्ती तथा परावाक् तक की यात्रा करनी होगी।

भाषिक परिवेश और मिथकीय परिवेश

मनुष्य का जन्म जिस परिवेश में होता है, उस परिवेश का बिंब उसके मन पर अंकित हो जाता है। बिंब-प्रतिबिंब भाव धीरे-धीरे इतना गहरा हो जाता है कि वह परिवेश उसके मन में व्याप्त हो जाता है।बालक जन्म लेता है, परिवेश के शब्द को सुनता है। धीरे-धीरे शब्दमयः परिवेश से उसका परिचय इतना गहरा हो जाता है कि वह भाषा उसकी चेतना में समा जाती है। उसी भाषा के माध्यम से वह सोचता है और उसी के माध्यम से वह सामाजिक व्यवहार करता है। जैसे भाषिक परिवेश मनुष्य की चेतना में व्याप्त हो जाता है, वैसी ही बात, हम मिथक के संबंध में भी कह सकते हैं।

पौराणिक गाथाओं का मूल उत्स लोकजीवन

'पुराण' शास्त्र है और 'पुराण-तत्त्व' लोकजीवन में बिखरी हुई प्राचीन लोकवार्ता है। पुराण और पुराण-तत्त्व के बीच गहरा संबंध है। आदिवासियों के जीवन और मन में भी पुराण-तत्त्व है, भले ही उन्होंने पुराण का नाम भी नहीं सुना। लोक में व्याप्त 'पुराण-तत्त्व' को यदि मिट्टी कहा जाय तो पुराण घड़ा या मिट्टी की प्रतिमा या खिलोंना है। प्राचीन लोकवार्ता को ही पुराणतत्त्व कहते हैं, जिसका सूत्र आदिम-मनुष्य से जुड़ा हुआ है। पुराण जातीय स्मृति है, अपने मूलरूप में वह लोकगाथा हैं, इसलिए लोकगाथाओं के सन्दर्भ को जाने बिना पुराण का कोई भी अध्ययन अधूरा है।

पौराणिक गाथाओं का मूल उत्स लोकजीवन ही है, इस तथ्य को महाभारत तथा अन्य पुराणों में संकलित कर देने से लोकजीवन में प्रचलित कथाओं की विकास-यात्रा तनिक भी अवरुद्ध नहीं हुई, वह तो विविध रूपों में बहती ही रही है। सीता वनवास की गाथा के कितने ही पाठ है।

डब्ल्यू के विल्किन्स ने अपनी हिन्दू मायथोलोजी (1882) में लिखा है कि यह एक आश्चर्य की किन्तु

सच बात है कि विन्ध्याचल में अभी भी कुछ आदिवासी जातियाँ हैं जो राम और सीता की अनेक गाथायें गाती हैं। जातियाँ हिन्दू नहीं है और हिन्दूधर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानतीं। इन जातियों के लोग शक्ल-सूरत में भी बिल्कुल हिन्दुओं के से नहीं लगते। वे काले हैं, उनके बाल घुंघराले हैं, होठ मोटे है और उनका अफरीका की जातियों से अधिक साम्य है। प्रतीत होता है कि ये कथायें उनमें परम्परा से उतरकर आई होगी।

पुराण मूलत: लोकगाथा

पुराण मूलत: लोकगाथा हैं! छोटी सी घटना हो या युगान्तरकारी घटना, जन्म हो या मृत्यु व्यवस्था हो या विद्रोह युद्ध हो या संधि-प्रत्येक घटना अंतत: लोक के क्रियाशील जीवन में ही घटित होती है। हर क्षण घटनाएं घटती हैं फिर क्षण प्रहर में समाता है और प्रहर दिन में समा जाता है, आज की घटना कल में समा जाती है। दिन वर्ष बनते हैं, वर्ष युग बनते हैं, युग कल्प-कल्पान्तर बन जाते हैं। घटित की गूंज पहले आपबीती और जगबीती में सुनाई देती है। संवाद होता है, संवाद छन कर किस्सा बनता है, किस्सा छन कर कहानी बनती है और फिर कहानी गाथा बन जाती है। छोटा वृत्त बड़े वृत्त में अन्तर्भुक्त होता है, अन्त में पुराण बनता है और वह मिथक के रूप में लोकचेतना का अंश बन जाता है।

लोकगाथाओं के संकलन-कर्ता सूत जाति

सूतों ने बृहत्तर-भारत के विशाल भूभाग से लोकगाथाएँ एकत्र कीं, सामूहिक-राष्ट्रीय-स्मृतियाँ संजोयी, जीवन और प्रकृति के प्रति विकसित होनेवाले दृष्टिकोण की व्याख्या की, सामाजिक-जीवन की हलचल बतलायी। प्राचीन भारत में सूतों का कार्य था-लोकगाथाओं का संकलन और गायन। वेदव्यास कृष्णद्वैपायन के शिष्य रोमहर्षणि आख्यानसाहित्य के प्रसिद्ध-प्रवक्ता थे। उनके पुत्र उग्रश्रवा ने लोकगाथाओं का संकलन किया था। महाभारत, रामायण और पुराण वाचिक-परंपरा में ही विकसित होते रहे। उनमें कितनी ही लोककथा और लोकगाथाओं का समावेश है, जो जनपदीय-जीवन से आयी हैं। रामायण की गाथाओं के गायन की परंपरा का सूत्र कुश और लव से जुड़ा हुआ है। कुश और लव जनता के बीच सुर और ताल के साथ रामायण का गायन करते थे। रामायण में स्थान-स्थान पर कुशीलव शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसे वैयाकरण आर्ष-प्रयोग बतलाते है, जिसका अर्थ है गुण -गान का व्यवसाय करने वाले बंदीजन। जैमिनि अश्वमेध (55.44.1) के अनुसार सूत, मागध एवं बंदीजन क्रमशः प्राचीन, मृत एवं वर्तमान राजाओं के इतिहास एवं वंशावली सम्हालने का काम करते थे, पद्मपुराण के अनुसार सूत लोग प्राचीन काल से ही देव, ऋषि एवं राजाओं के चरित्र-गायन करते रहे हैं। सूत लोगों के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए वायुपुराण में कहा गया है कि-

स्वधर्म एवं सूतस्य समुद्दिष्टः पुरातनैः।
देवतानामृषीनां च राज्ञां चामिततेजसाम्।
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।

1.26-28

महाभारत में उल्लेख है कि व्यास ने तत्कालीन समाज में प्राप्त कथा-आख्यायिका तथा गाथाओं को एकत्र कर आद्य पुराण-ग्रन्थों की रचना की और अपने शिष्य रोमहर्षण को पुराण-विद्या सिखाई। कथा और पुराकथा के सत्र आयोजित होते थे! ध्यान देने की बात है कि भागवत की ज्ञान-परंपरा के वक्ता सूत हैं, सूतजी, और श्रोता हैं शौनकादि ऋषि! वे प्रश्न कर रहे हैं और सूतजी उत्तर दे रहे हैं! उत्तर के रूप में गाथा सुनाते चले जाते हैं!

शेष पृष्ठ 58 पर >>>

लोकाचार पूजन और कुलदेवी-देवता

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
'गार्ग्यपुरम्' श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला- गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com

प्रागैतिहासिक साल में पर्वत कंदराओं में हमें शैलचित्र मिलते हैं, जिनके साथ अनेक ऐसे संकेत हैं जो सिद्ध करते हैं कि अमुक गुफा उस काल में आस्था के केन्द्र के रूप में पूजित रही होगी। प्रकृति के साथ तालमेल बैठाकर चलने वाले आदिम मानव के मन में यह बात समा गयी थी कि कुछ अलौकिक है जो हमारी रक्षा करती है तथा हमें दण्ड देती है। लेखक के ही शब्दों में, *"यह लेख इन्हीं विश्वासों, उपचारों एवं लोकाचारों पर आधारित है। जिसका एक सामाजिक आधार है, जो व्यक्तियों में परस्पर आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर आपस में एकत्व का बोध कराता है। इसका प्रतिफल यह भी है कि धर्म मानसिक उद्वेग, घृणा, लोभ आदि को दूर कर प्रेम का रस भरता है, जो मस्तिष्क-शुद्धि का एक आवश्यक अंग कहा जा सकता है।"*

इनमें से नारी शक्ति की उपासना की अपनी उदात्त परम्परा रही है। हर क्षेत्र में लोकदेवी के रूप में विभिन्न नामों से इनकी उपासना होती है। इनमें से कई देवियों के नाम पुराण-साहित्य में नहीं मिलते हैं, उपासना की विधि भी क्षेत्रानुसार अलग अलग है, तथापि नारी शक्ति की जो अवधारणा है, उसमें एकत्व है।

'लोकाचार' शब्द का प्रयोग सामान्यतः लोकरीतियों के लिये भी होता है। लोकाचार में समुदाय के लोककल्याण से सम्बन्धित उपयोगी तत्त्वों का समावेश देखा गया है। लेकिन यही आचार जब व्यक्तिगत कल्याण के लिये हो, तो यह लोकचार नहीं कहला सकता। कहने का तात्पर्य है ऐसे व्यवहार जिन्हें एक समूह के सदस्यों के द्वारा अपनाकर स्वीकृत कर ली जायें, तभी यह जनरीति, लोकरीति या लोकाचार कहलाने लग जाती है। लोकाचार में सरलता, सामयिक उपयोगिता, मौखिकता, अव्यावसायिकता, सामूहिकता आदि के गुण देखे जाते हैं।

अंग्रेजी का Religion (धर्म) एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है- इकट्ठा करना, बाँधना, निरीक्षण करना आदि भी होता है। धर्म का अन्य अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि किसी परलौकिक शक्ति में विश्वास रखना और उसका निरीक्षण करना और यही विश्वास कालान्तर में एक दूसरे को बाँधने के भी माध्यम बन जाते हैं। जिसप्रकार धर्म को धारण किया जाता है, उसीप्रकार लोकाचार भी धारण किये जाते हैं और यह हमारे धर्म के साथ-साथ ही चलता है। धर्म के अंगों में सिद्धान्त, व्यवहार या आचरण, विधि या रीति का समावेश रहता है; उसीप्रकार आचार में भी इन्हीं तत्त्वों के दर्शन होते हैं। इसमें 'क्यों' तथा 'किसलिए' का कहीं स्थान नहीं होता। कहा गया है- **आचारः परमो धर्मः।**[1]

1 मनु- 1/108

प्रागैतिहासिक काल की चर्चा करें तो मानव सदृश प्राणी जिसे निएन्डरथल मानव (1,00,000 वर्ष पूर्व) कहा जाता था, इनमें धर्म की मान्यता की भावना का अस्फुट विकास होने लगे थे। लेकिन नियोलोथिक (नवपाषाण) युग (10,000-4000ईसापूर्व) आते-आते पत्थरों के औजार बनने लगे थे। पत्थरों में प्रकृति के दर्शन होने के कारण, पत्थरों के स्तम्भ, धार्मिक स्थानों में पाषाण की अनगढ़ सांकेतिक प्रतीक-चिन्ह भी स्थापित किये जाने लगे थे। पुरातन मानव की दशा का वर्णन करें तो-मनुष्य प्रकृति को गोद में ही रहा करता था। इसके लिये सूर्य का समय पर उदय होकर अस्त होना, अस्त होने के साथ चाँद का निकलना, वर्षा, झंझावात, भूकम्प, जन्म और मृत्यु आदि जैसी अद्भुत घटनाएँ बेबस होकर देखता हुआ मानव मन में कौतूहलता उत्पन्न करती थी। वह यह सोचने को विवश हो जाता था कि कोई महान् अलौकिक (Super-natural) शक्तिसम्पन्न सत्ता ऊपर बैठकर यह कार्य कर रही होगी। प्रकृति प्रदत्त पीने के लिये जल, साँस लेने के लिए प्राणवायु, खाने के लिये वृक्षों के मीठे फल, छुपने के लिये कन्दराएँ आदि आदि देखकर किसका मन उस महान् सत्ता के आगे झुकना नहीं चाहेगा! आभार प्रकट करते हुए अपना शीश ऊपर उठाकर और श्रद्धा से झुकना, उनका यह व्यवहार उपासना ही कहलायेगा।

उनकी ऐसी प्रार्थना ही कालान्तर में धर्म का व्यावहारिक रूप लेने लगी होगी। मानव के पूर्वजों ने इस सम्बन्ध में कितना गहन अध्ययन किया होगा, जबकि उस समय संसाधनों का भी नितान्त अभाव रहा होगा। अतः उस शक्ति से तादात्म्य स्थापित करना तथा इन अलौकिक शक्ति में विश्वास प्रकट करना ही धर्म के आधारभूत तत्त्व कहे जा सकते हैं। इसे धार्मिक दृष्टि से एक पक्ष कहा जा सकता है। लेकिन समाजशास्त्रीय एवं मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसका एक दूसरा पक्ष भी है जिसमें इन अलौकिक शक्तियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्हें अपने अधीन करने की भी प्रक्रिया का उद्भव हुआ, जिसे तन्त्र-मन्त्र का नाम दिया जाता है। पुनः एक तीसरा पक्ष भी सामने देखने को मिलता है, जिसमें संसार के कार्य-कारण सिद्धान्तों (Cause effect) की अवधारणा को जन्म दिया। यह कालान्तर में वैज्ञानिक दृष्टि के नाम से जाना जाने लगा, जिससे इन तीनों (अलग-अलग दृष्टिकोणों) को क्रमशः धर्म (Religion), जादू (Magic) तथा विज्ञान (Science) का नाम दिया गया।

उपर्युक्त सन्दर्भ को विस्तार न देते हुए कहने का तात्पर्य है कि अनगढ़ पत्थरों में देवपूजन करने का प्रचलन प्राचीनकाल से ही है। अतः लेख इन्हीं विश्वासों, उपचारों एवं लोकाचारों पर आधारित है। जिसका एक सामाजिक आधार है, जो व्यक्तियों में परस्पर आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर आपस में एकत्व का बोध कराता है। इसका प्रतिफल यह भी है कि धर्म मानसिक उद्वेग, घृणा, लोभ आदि को दूर कर प्रेम का रस भरता है, जो मस्तिष्क शुद्धि का एक आवश्यक अंग कहा जा सकता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भाव या मनोविकार' शीर्षक निबन्ध में कहा है- 'भक्ति धर्म की रसात्मक अभिव्यक्ति है।'[2] धर्म का आश्रय लेकर मनुष्य अतिमानवीय शक्ति से सामञ्जस्य कर आत्मिक स्थिरता प्राप्त कर सकता है, जो अनुभूत है। परिणामस्वरूप किसी के 'कुल' (वंश, परिवार) के देवता अथवा देवी के रूप में मानव भाव में प्रतिस्थापित होकर एक सामूहिक उपासना गृह का निर्माण कर डालता है। अब लोकाचार के सम्बन्ध में विशेषकर कुलदेव-कुलदेवियों की चर्चा करें-

2 शुक्ल, रामचन्द्र, चिन्तामणि, भाग 1, इंडियन प्रेस इलाहाबाद, 1946, पृ० 5

मातृशक्ति को प्राथमिकता

साधारणतः कुलदेव की अपेक्षा कुलदेवी का ही महत्व क्यों? यह प्रश्न सामने आ खड़ा होता है, जब की दोनों की महत्ता समान है। फिर भी दार्शनिक दृष्टि से देखें तो पहले 'त्वं स्त्री त्वं पुमान्' आदि श्रुति भी प्रथमतः नारीशक्ति का ही उल्लेख करती है, दूसरे नारी के ब्रह्म-स्वरुपा होने के उल्लेख तथा तीसरे नारी में सर्जन क्षमता का होना जैसे अनेक विशेषताओं के चलते इनकी महत्ता प्रतिपादित होती है। दूसरा पक्ष है कि निर्गुण ब्रह्म जब शक्ति सम्पन्न होता है तभी सृष्टि की प्रक्रिया आरम्भ होती है। शंकराचार्य ने कहा है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।'

अर्थात् शक्ति संवलित न होने पर 'शिव' शिव नहीं रह जाता, क्योंकि शिव का 'इ' कार निकलने के बाद तो वह 'शव' ही रह जाता है। नारीशक्ति की महत्ता ऋग्वेद जो प्रकारान्तर दुर्गासप्तशती में भी द्रष्टव्य है-

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥[3]

'मैं रुद्रों एवं वसुओं के साथ उनकी रक्षा एवं शक्तिवर्धनार्थ संचार करती हूँ, मैं आदित्यों और विश्वेदेवों के सम्पोषणार्थ उनके साथ घूमा करती हूँ। मैं मित्र और वरुण का, इन्द्र और अग्नि का तथा दोनों अश्विनीकुमारों का भी पोषण करती हूँ।'

भारतीय दर्शन में आद्याशक्ति को प्रकृति के रूप में माना गया है, ईश्वर ने स्त्रीतत्त्व के रूप में प्रकृति को ही उत्पन्न किया। इसे ही माया, महामाया आदि कहा गया है। इसी कारण समस्त संसार में मातृदेवी को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

पुनः पाणिनीय व्याकरण में विधान किया गया है कि माता एवं पिता शब्द में यदि समास करेंगे तो प्रथम प्रयोग माता का होगा। एकशेष करने पर 'पितरौ' शब्द से दोनों की अभिव्यक्ति होगी। 'माता-पितरौ' कहते हुए मनुस्मृति में स्पष्ट किया गया है-

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥[4]

ब्रह्मवैवर्त पुराण तो माता को पिता से भी श्रेष्ठ प्रतिपादित करता है-

पितुः शतगुणा पूज्या वन्द्या माता गरीयसी। [5]

महाभारत में भी कहा गया है-

गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः॥[6]

'पिता से शतगुणी पूज्या महिमामयी माता है, आदरणीय है। गुरुओं में गुरु-माता परम श्रेष्ठा हैं।' 'मिस्र, मेसोपोटामिया, ईरान के अतिरिक्त प्रागैतिहासिक स्थलों में मातृदेवी, भूदेवी के रूप में प्रस्तर पर अंकित अनगढ़ आकृति में शक्ति की आराधना की जाती थी। सिन्धुघाटी के उत्खनन से प्राप्त बहुसंख्यक चक्राकार वर्तुल फलकों को प्रजनन-शक्ति का प्रतीक माना गया है।[7] इसी कारण देवी-देवता के संयुक्त नामों में पहले देवी के नाम लेने की प्रथा चल पड़ी है, जैसे- राधा-कृष्ण, सीताराम, राधा-माधव, लक्ष्मी-नारायण आदि। जिस समय देवी-देवताओं के स्वरूप की रचना भावानुसार की जाने लगी होगी, उस समय कितनी सामाजिक जटिलताएँ रही होंगी। साधनों और संसाधनों के अभाव में उपासना-गृह का क्या स्वरूप रहा होगा, यह चिन्तन का विषय है। क्योंकि उस समय आज की तरह अनुकूल एवं उन्नत संसाधनों का नितान्त अभाव भी रहा होगा,

3 ऋग्वेद, 10/125/1
4 मनुस्मृति, 2.227.
5 श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड उत्तरार्द्ध, 59.144
6 महाभारत, 1, 211,16.
7 कल्याण, शक्ति उपासना अंक, 1988ई., पृ.161

फिर भी यह कहने में कदापि संकोच नहीं करना चाहिये कि आध्यात्मिकता की माप संसाधनों से नहीं की जा सकती है।

इस सन्दर्भ में लोक-देवियों की चर्चा भी अपेक्षित प्रतीत होती है, विस्तारभय के कारण संक्षिप्त रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि भारतवर्ष के कोने-कोने में यह प्रथा अनवरत चली आ रही है। लोक-उपासना में विशेषतः मातृशक्ति की उपासना ही देखी जाती है, जिसमें कुछ पौराणिक देवियाँ हैं तो कुछ लौकिक। पौराणिक मातृदेवियों में गौरी, लक्ष्मी, राधा, षष्ठी आदि हैं, तो वहीं लौकिकों में शीतला, गोसाईंन, सतीमाता, गणगौर आदि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मालवा प्रान्त में भादवा माता, मोड़ी माता, दूधाखेड़ी माता, आँत्री माता, विजासनी माता आदि अनेक लोकदेवियाँ उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र में वीर-बालाओं के नाम से भी पीठ हैं।

राजस्थान (जोधपुर) में करणीमाता अनेक परिवारों की कुलदेवी के रूप में पूजी जाती हैं। झुँझुनू स्थित 'राणीसती' का नाम अत्यन्त आदर से लिया जाता है। राजस्थान की धरती शौर्य, वीरता एवं बलिदान की भूमि रही है। राजस्थानी लोकपरम्परा में अनेक सतियों के पूजा-स्थल देखे जा सकते हैं। दक्षकन्या सती के अङ्ग के एक्कावन भाग अलग-अलग और जहाँ-जहाँ जिस स्थानों पर गिरे, ये सिद्धशक्ति-पीठ के नाम से जाने जाते हैं। राजस्थान में 'गणगौर' (गणगौर में ईसर- शिव और गणगौर- पार्वती हैं और इनकी गाँव-गाँव सवारी निकाली जाती है।) कुलपूज्या हैं तथा कुमारी कन्याओं की आराध्या भी हैं।

सौराष्ट्र, गुजरात, महाराष्ट्र में माता 'खोडियार देवी' की पूजा होती है, जिनके दो रूप कह गये हैं- प्रथम मानवी तथा देवीरूप। इसके नाम से भावनगर के पास रेलमार्ग में एक खोडियार स्टेशन भी है।

मध्यप्रदेश के बस्तर-वनाञ्चल में एक शक्तिपीठ भी हैं, यहाँ सती का दन्त गिरा था, अतः दन्तेश्वरी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पंजाब में लोहड़ी का सम्बन्ध भगवान् शिव की पत्नी सती के सती-दहन को लोकपर्व के साथ जोड़ा जाता है। यहाँ शीतलामाता को शक्ति के रूप में मान्यता है।

हिमाचलप्रदेश की लोकदेवियों का सम्बन्ध पौराणिक देवियों से भी जोड़ा जाता है, जिनमें आद्याशक्ति, जालपा आदि सात प्रमुख लोकदेवियाँ उल्लेखनीय हैं। पुराणों (ब्रह्मवैवर्त पुराण, देवीभागवत) में वर्णित बालकों की अधिष्ठात्रीदेवी, ब्रह्मा की मानस पुत्री, स्कन्द की पत्नी भगवती 'षष्ठी देवी' (देवसेना) का पूजन-लोकाराधन के लिये प्रसिद्ध है। नवजात शिशु के जन्म के छठे दिन दीवारों पर षष्ठी देवी के सांकेतिक प्रतीक के रूप में मंगलद्रव्यों द्वारा उकेरी गयी आकृतियाँ (पुद्गलिका) की पूजा होती है। षष्ठी देवी को शिशुओं के संरक्षण एवं संवर्धन से जोड़ा जाता है। मथुरा यादवों की नगरी है, इनकी कुलदेवी एकानंशा हैं - जिन्हें श्रीकृष्ण की भगिनी कहा गया है। यह महामाया या योगमाया हैं, जो विन्ध्येश्वरी के रूप में उपास्य हैं।[8] महाभारत के सभापर्व में कहा गया है-

ततः प्राप्ता यशोदाया दुहिता वै क्षणेन हि।
जाज्वल्यमाना वपुषा प्रभयातीव भारत॥
एकानङ्गेति यामाहुः कन्यां तां कामरूपिणीम्।[9]

अर्थात् 'उसी समय माता यशोदा की पुत्री क्षणभर में वहाँ आ पहुँची। उनके अंग दिव्यप्रभा से प्रज्वलित हो रहे थे। उस कामरूपिणी कन्या का नाम 'एकानंगा' था।' यहाँ एकानंगा और एकानंशा का स्वरूप दो नहीं बल्कि एक ही समझा जाना चाहिये। क्योंकि इन्हीं के निमित्त से पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने सैनिकों सहित आततायी कंस का वध किया था।

8 कल्याण, उपर्युक्त,

9 महाभारत, सभापर्व, 37, दाक्षिणात्य पाठ

मिथिलाञ्चल धर्म-प्रधान क्षेत्र है, जिसमें कुल-परम्परा के अनुसार पूजन करने का विधान है। संक्षिप्त चर्चा के रूप में विधि-विधान से पञ्चोपचार द्वारा स्थापित कुलदेवी को 'गोसाउनि' कहा जाता है। भक्त शिरोमणि विद्यापति कहते हैः-

'सहज सुमति वर दिअओ 'गोसाउनि'
अनुगत गति तुअ पाया॥'

इसके अतिरिक्त विषहरा (सर्पदंश से मुक्ति के लिये), ग्रामदेवता के रूप में सतीमाता तथा अघोरीनाथ, दिनाभद्री, सलहेश आदि का पूजन समय-समय पर किया जाता है।[10] कहीं-कहीं सर्प-दंश की आध्यात्मिक चिकित्सा हेतु ग्राम में अथवा गाँव के बाहर एक निर्धारित स्थान जैसे मंदिर, प्रतीक चिह्न आदि की चर्चा भी अपेक्षित हैं।

यहाँ देवीरूप में मनसादेवी (सर्पों की माता) की पूजा की जाती है। सर्पदंश से ग्रसित लोग इस स्थान पर आकर पूजा-आराधना कर विषमुक्त होते हैं। इसलिये इन्हें 'विषहरी माता' का नाम दिया गया है। हरिद्वार में इनका भव्यमन्दिर है। इसी सन्दर्भ में एक और नाम लिया जाना अपेक्षित है- वह है 'दुबेमण्डा'। यह स्थान भी एक लोक अध्यात्मिक केन्द्र के रूप में विषजन्य रोगों की उपचार का स्थान कहा जाता है।

समूह कल्याण की भावना

कुलदेव या देवी के मन्दिर देखने में स्थूल अवश्य प्रतीत होते हैं, किन्तु इनमें छुपे हुए तत्त्वों, रहस्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करें तो देखा-समझा जा सकता है कि इसके मूल में अनुवांशिकी के बीजों के स्पन्दन छुपे हैं। 'कुल' को एक समूह के रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जिसमें समूह-सदस्यों के रक्त-सम्बन्ध रहे हों तथा सभी एक वंशानुक्रम बन्धन से बंधे हों या स्वीकार करते हों। रक्त-सम्बन्धी पीढ़ियों के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला समूह ही वंश कहलाता है। यदि एक कुल के व्यक्ति पिता से अपनी अनुगतता बतलाता हो, तो ऐसे समूह को 'पितृकुल' कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि ये माता के कुल से अपनी अनुगतता को बतलाते हों, तो यह 'मातृकुल' कहलाता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रत्येक वंश किसी न किसी गोत्र से सम्बद्ध होता है। वंश का विस्तार हो सकता है किन्तु गोत्र का नहीं हो सकता, क्योंकि किसी भी वंश में अनेक गोत्र नहीं हुआ करते। कोश में गोत्र का अर्थ 'गोष्ठ' कहा गया है जिनका सम्बन्ध वंश परम्परा से है। किसी वास्तविक पुरुष से वंश परम्परा की शुरुआत मानी जाती है। साधारणतः गोत्र-प्रवर आदि के प्रवर्तक महर्षि ही हुआ करते हैं। गोत्र आदि का भी एक वैज्ञानिक आधार है, जिससे अनुवांशिक गुणों को ढूँढा जा सकता है। यह व्यवस्था आज की नहीं अपितु चतुर्युगों से अनवरत चली आ रही है। इसप्रकार किसी वंश के व्यक्ति द्वारा प्रतिष्ठापित उपासनागृह में उसी वंशविशेष अथवा गोत्रविशेष के व्यक्ति ही उपासना किया करते हैं। उपासना के उपचार, विधि-विधान, मान्यताओं में किसी भी स्थिति में बदलाव नहीं किये जा सकते तथा हर सम्भव यही प्रयास रहता है कि इसकी शुद्धता एवं परम्परागत-विधिविधान अक्षुण्ण रहे। ऐतिहासिक मान्यताओं को देखने से पता चलता है कि छत्रपति शिवाजी के गुरु स्वामी समर्थदासजी ने इन्हें कुलदेवी माता भवानी की उपासना करने को कहा था। ये देवी-देवता हमें एवं हमारे कुल को संकटों से रक्षा किया करते हैं तथा जिससे कुल या वंश की समृद्धि में उतरोत्तर वृद्धि हो एवं वंश-रक्षा होती रहे।

लोकरक्षक के रूप में

अब कुल परम्परा के अनुसार उपासना-गृह या मन्दिरों में स्थापित देवी या देवता की उपासना के

10 कल्याण, देवता अंक, पृ. 397

प्रयोजनों की चर्चा अपेक्षित है, जिसे वंश-विशेष के लोग इसे नितान्त ही व्यक्तिगत, आध्यात्मिक मानते है। जिनके स्वरूप, नाम, उपचार, विधि-विधान किसी अन्य समूह के सदस्यों को प्रकाशित नहीं किये जा सकते, क्योंकि इसे अत्यन्त ही गुप्त माना जाता है। मन्दिरों में स्थापित एवं पूजित देवी-देवताओं के चुनाव का कहीं लिखित इतिहास भी उपलब्ध नहीं है, लेकिन इसका ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी कहकर या सुनकर आगे चलता रहता है। हमारे पूर्वज-पुरुषों ने किसी अज्ञात एवं हितैषी पारलौकिक शक्ति-सत्ता का अनुभव अवश्य किया होगा, जो अपने कुल की रक्षा नकारात्मक तत्त्वों से की होगी, जिससे बाधाओं का शमन हुआ होगा और परिवार की सुरक्षा हुई होगी और तभी से ऐसी प्रथा की शुरुआत हुई होगी। इस उपासना के आयोजनों में उसी समूह-विशेष की उपस्थिति की प्रधानता भी उपलक्षित होती है तथा इसमें विधि-विधान से पूजन कर्म किये जाते होंगे। यह आयोजन प्रथमतः तो शोक, विषाद आदि जैसे त्रितापों से बचने के लिये किये जाते होंगे, लेकिन कालान्तर में विभिन्न प्रयोजनों जन्म, विवाह एवं अन्य मांगलिक आयोजनों आदि में विस्तार पाने लगे होंगे, जिसे एक अनिवार्य धार्मिक कृत्य समझा जाने लगा। जिनके लिये स्तुति, प्रार्थना, उपचार आदि के लिये साहित्यों का भी निर्माण होना शुरू हो गया होगा, जिसका ज्ञान मात्र अपने कुल के सदस्यों के अन्तर्गत ही होते हैं।

अध्यात्मिक संगठन का आधार

कुलदेव या देवी की पूजा जो अनुमानतः हजारों वर्षों से की जाती रही है, इसके पीछे असंगठित (छितराये) कुल को समय-समय पर संगठित करने की भावना भी कही जा सकती है। जिससे एक निश्चित स्थान पर, समय पर एवं आयोजनों में सभी की उपस्थिति दर्ज हो और एक निश्चित धार्मिक-आध्यात्मिक अनुशासन का भी निर्माण कर सबों को कुलपूजन कर्म में शिक्षित किया जा सके। जैसे कोई व्यक्ति गाँव से दूर अलग रहकर जीवन-यापन कर रहा हो, किसी धार्मिक कृत्य करने के पहले कुलदेवी-देवता के पूजन करने का विधान है, तो वह निश्चित ही अपने गाँव अथवा जहाँ कुलदेवी-देवता के पूजन का स्थान होगा, वहाँ पहुँचकर कुलदेवी-देवता का पूजन करना चाहेगा। इसप्रकार वह अनुशासित होकर कुल-परम्परा से बँधा रहता है और जब वह अपने गाँव आता है, तब वह अपने वंश के सभी लोगों से मिलने-जुलने का एक सुखद अवसर भी पाता है। महाभारत में भी एक प्रसंग आता है जब पाण्डवों को युद्ध में विजयश्री मिली, तब प्रथम बार जब ये राजमहल के भीतर प्रवेश कर रहे थे तब राजमहल में ही स्थित कुलदेवताओं के दर्शन, अर्चन, वन्दन, पूजन किया था-

प्रविश्याभ्यन्तरं श्रीमान्दैवतान्यभिगम्य च।
पूजयामास रत्नैश्च गन्धमाल्यैश्च सर्वशः॥ [11]

कुलदेव या देवियों के लोकस्वरूप

कुलदेवी के स्वरूपों में मुख्यतः शक्तिस्वरूपा जगदम्बा के विविध लोकस्वरूप जैसे- काली, तारा, छिन्नमस्तिका, भुवनेश्वरी, परमेश्वरी, सिद्धेश्वरी, वैष्णवी, त्रिपुरसुन्दरी, गौरी, लक्ष्मी, दुर्गा आदि देवी के रूप में तथा देवों के रूप में विष्णु, नरसिंह, गणेश, सूर्य, शिव आदि देखने को मिलते हैं। उपासनाओं की पद्धतियाँ देवी-देवताओं के रूप, गुण, लीला वैचित्र्य के अनुसार विविधताओं से पूर्ण हुआ करती होती हैं, जिसमें कहीं सौम्य तो कहीं उग्र भी होती हैं। इन कुलदेवी एवं कुलदेवताओं के स्वरूपों या आकृतियों के सन्दर्भ में यह देखने में आता है कि इनकी प्रतिमायें आजकल के अनुरूप भव्य न होकर मात्र सांकेतिक

11 महाभारत, शान्तिपर्व, 37.14.

कुलदेवता का स्थान

अथवा प्रतीकात्मक हुआ करती थी। पुनः यह भी ध्यातव्य है कि इनके उपासना-गृह मन्दिर गाँव में ही स्थित हुआ करते थे या फिर अपने गृहों में अलग व्यवस्थानुसार। साधारणतया यह देखा-सुना जाता है कि इन कुलदेवी एवं कुलदेवताओं के स्वरूपों या आकृतियों के विवरण देने में सभी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं, क्योंकि कुलपरम्परानुसार इसे इसी प्रकार गृहीत ही किया गया है, जिसमें कोई भी परिवर्तन न तो किया गया है और न तो निकट भविष्य में होने की सम्भावना ही दिखती है। क्योंकि इनके परम्परागत स्वरुप या जिस रूप में हमें प्राप्त हुए हैं उसी स्वरुप में आज भी उपासित हैं। इसपर यही कहा जा सकता है कि जो है, जहाँ है, जैसा है- वैसा ही है। आजकल तो बहुत से कुलजन अपने देवी-देवता के नाम से भी परिचित नहीं होते, जबकि वे उनमें श्रद्धा भी रखते हैं। इनकी लोक आकृतियों में सामान्यतः यह देखा गया है कि किसी लकड़ी के पाटे पर या पत्थर पर, कहीं-कहीं दीवारों पर, दीवारों पर बने ताखों (आलमारीनुमा) पर आकृति विशेष का निर्माण कर/ बनाकर पूजते हैं, जिन्हें कुलदेवी एवं कुलदेवताओं के स्वरूपों के रूप में मान्यता है। क्योंकि इस सन्दर्भ में कोई भी लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं हुआ करते और न तो कोई व्यक्ति ही पूर्णतः बता पाने में सक्षम होते हैं। इस सन्दर्भ में जो है, जैसा है वही मान्य है- की परम्परा चलती आ रही है। इन उपासना-गृहों की रक्षा एवं विशुद्धता को हरसम्भव अक्षुण्ण बनाये रखने की प्रतिबद्धता होती है। इनके स्वरूपों एवं आकृतियों में सिन्दूर की लम्बवत् सीधी लकीरें, सिन्दूर, हल्दी, चावल के घोल आदि जैसे मांगलिक वस्तुओं में दाहिनी हाथों को डुबोकर बनाये गये छापों के लम्बवत् संख्यात्मक चिन्हों को देखा गया है। इनमें सिन्दूर से बनाए गये चिन्हों में विविधता भी होती है जैसे- पाँच, सात, नौ या कुलपरम्परानुसार। पूजन सपत्नीक या फिर जैसी लोकरीति या परम्परा हो, से की जाती है। पूजन के नैवेद्य (जो पूर्णतः शुद्ध-संस्कारित हों, बाहर के बने हुए नहीं होने चाहिये, अन्य कुलों के द्वारा भी नहीं बने हों) कुलपरम्परा के अनुसार ही बनाये जाते हैं। जिन्हें मात्र उसी कुल के लोग ही ग्रहण किया करते हैं, अन्य समुदाय के लोगों को प्रसाद ग्रहण करना पूर्णतः निषेध कहा गया है।

आदिवासी लोकरीतिओं में

प्रकृति पूजक आदिवासियों में भी अपने कुलदेव-कुलदेवियों में अपार श्रद्धा है। नागाओं में श्रद्धास्वरुप भावित पत्थर उपासना की विशेष एवं महत्वपूर्ण वस्तु मानी जाती है। इनका विश्वास है कि इनमें कुछ आत्माएं निवास करती हैं। उराँव में ईश्वर या देवी-देवता के अस्तित्व को मानते हुए प्रतीक रूप में पत्थर, लकड़ी के खूंटे में आराध्य को प्रत्यारोपित करते हैं। छोटानागपुर में अनेक आदिवासी समुदाय निवास करते हैं, जिसमें 'संथाल' प्रमुख हैं, इनमें प्रकृति-पूजा

दिसुम जाहेरथान गुंडा, चांडिल में दिसुम सरहुल महोत्सव
फोटो साभार: https://lagatar.in/

का तो चलन है ही, साथ ही इनके धर्मस्थानों के नाम 'जाहेरथान' और 'माझीथान' के नाम से जाने जाते हैं। इनके धर्म स्थानों में मूर्तियाँ नहीं होती हैं।

भील नामक जनजातियों में हनुमान को एक शक्ति के रूप में मान्यता देते हैं तथा इनकी उपस्थिति हरेक गाँव में होती है। देवताओं के प्रतीक के रूप में पत्थर रखे जाते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में वर्णित धर्मस्थानों के नाम में 'थान' शब्द व्यवहृत हुए हैं। थान के बारे में सामान्यतः यही मान्यता है कि ये 'रक्षकदेव' हुआ करते हैं। इनके स्वरुप सनातन धर्मियों के मान्य देवी-देवताओं की तरह जैसे गणेश, सूर्य, शिव आदि के रूप में ही होते हैं। आरम्भिककाल में ये मात्र एक प्रतीक के रूप में ही पूजित होते होंगे, लेकिन विकासवादी व्यवस्थाक्रम एवं भक्त के भावानुसार इन्हें आकृति देने के क्रम के साथ-साथ प्रतीक के रूप में पूजित व्यक्तदेव की प्रतिमाओं के सगुण-साकार रूप के सौन्दर्यबोध का भी ध्यान रखते हुए ये मूर्तदेव के रूप में आराधित होने लगे। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भगवान् सूर्यदेव का मूर्तिकरण कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है की जहाँ अनगढ़ पत्थरों की शिलायें जो एक प्रतीक के रूप में पूजित होती थीं, वह अब एक व्यक्त रूप में तथा भव्य मंदिरों में स्थापित-उपासित होने लगीं। 'थान' के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है- 'दक्षिण बिहार के विशेषकर (झारखण्ड क्षेत्र) जाङ्गलप्रदेशीय संथालपरगना में पूजनीय वृक्ष (चैत्य) आदि को 'थान' कहा गया है, जिसमें ऐसे देवता की प्रतिष्ठा कर एवं मानकर पूजा की जाती है जो ग्राम एवं ग्राम-पशुओं की रक्षा करते हैं।'[12] टीकाकारों ने चैत्य शब्द के विभिन्न अर्थ बतलाये हैं-

1. मार्गवर्ती पेड़,
2. चौराहा,
3. ग्राम-देवताओं के मंदिर,
4. देवताओं के निवास वाले वृक्ष,
5. देव-मंदिर,
6. वह स्थान जहाँ अश्वमेधयज्ञ की समाप्ति पर चयन क्रिया की जाती है,

लोकाचार के अनुरूप पूजित चैत्य

12 सूरिदेव, श्रीरंजन, कालिदास कृत मेघदूत, अनुवाद एवं संपादन, पृ०, 339

7. बौद्ध मंदिर अथवा वर्तुलाकार मंदिर,
8. चौराहों पर स्थित भवन,
9. वृक्ष-जिसके तने के पास वेदिका बनी रहती है एवं
10. श्मशान में बनाया गया कोई स्मारक या वृक्ष।

इसप्रकार चैत्य के अर्थ में भेद देखने को मिलते हैं। टोडा मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं रखती न ही प्राकृतिक वस्तुओं में। इनके देवता का नाम रंगास्वामी है, जो एक पहाड़ की चोटी पर निवास करते हैं। इनके प्रतीक के रूप में कुछ पत्थर रखे जाते हैं, जहाँ लोहे का एक त्रिशूल भी गड़े रहते हैं।[13] सामान्यतः मानवजाति ही नहीं बल्कि दानवों में भी किसी शुभकार्य के आरम्भ में अपने कुलदेव-देवियों के पूजन की मान्यता थी। रावणपुत्र इन्द्रजित् युद्ध हेतु विशेष शक्ति संचयन के लिये निकुम्भिला देवी के मन्दिर में जाकर अनुष्ठान भी करता है, जिसका फल यह है कि समराङ्गण में देवता या असुर कोई भी उसे देख नहीं पायेंगे, समस्त इन्द्रादि देवताओं के लिये भी इसे परास्त करना सम्भव नहीं होगा।[14] लङ्का में राक्षसों के कुलदेवता के स्थान को 'चैत्यप्रासाद' कहा जाता था।[15]

महाभारत के एक प्रसंग में दो टुकड़ों में प्रसव करने वाली मगध देश के राजा बृहद्रथ की दोनों पत्नियों ने अपने गर्भ को अपने एक धाय के माध्यम से कपड़ों में ढँककर चौराहे पर फिकवा दिया था। इन टुकड़ों को देखकर मगधदेश में ही रहने वाली जरा नामक एक क्रूर राक्षसी ने मोहवश जोड़ दिया और इसे पूर्ण बालक बनाकर राजा को ही सौंप दिया। इसी कारण इस बालक का नामकरण जरासन्ध किया गया। इस बालक को जरा ने संधित (जोड़ा) किया, इसलिये यह बालक जरासन्ध कहलाया। यह जरा नामक राक्षसी ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं कहने को राक्षसी हूँ, किन्तु ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में गृहदेवी के नाम से मेरी सृष्टि की थी। मैं दिव्यरूप धारण करने वाली हूँ। जो अपने घर की दीवार पर मेरा चित्र अंकित करता है उसके घर की सदा वृद्धि होती है। राजा ने अपने मगधदेश में जरा राक्षसी (गृहदेवी) के पूजन का महान् उत्सव मनाने की आज्ञा भी दी थी।[16] इसप्रकार 'जरा' एक हेतु बनकर गृहदेवी के रूप में पूजित हुई।

"ऐसे अनेक परिवार देखे जा सकते हैं, जिन्हें अपने कुलदेवी-देवता के बारे में कुछ भी पता नहीं। इसके गर्भ में जाने से यह पता चलता है कि जो परिवार एक स्थान से दूसरे स्थानों पर स्थानान्तरित हो गये, जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया, आक्रान्ताओं के भय से विस्थापित हो गये, संस्कार-क्षय, जानकार लोगों की मृत्यु, विजातीयता पनपने आदि के कारण ही इस परम्परा के लुप्त होने के कारणों के रूप देखे जा सकते हैं।"

जागरूकता की आवश्यकता

आजकल कुलपरम्परा अथवा लोकाचार के अनुसार उपासना, अर्चना का ह्रास देखने में आ रहा है। ऐसे अनेक परिवार देखे जा सकते हैं, जिन्हें अपने कुलदेवी-देवता के बारे में कुछ भी पता नहीं। इसके गर्भ में जाने से यह पता चलता है कि जो परिवार एक स्थान से दूसरे स्थानों पर स्थानान्तरित हो गये, जिन्होंने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया, आक्रान्ताओं के भय से विस्थापित हो गये, संस्कार-क्षय, जानकार लोगों की मृत्यु, विजातीयता पनपने आदि के कारण ही इस

13 Christopher Augustus Bixel Tirkey, क्रिस्टोफर ऑगस्टस विक्सेल तिर्की, आदिम धर्म एक परिचय, 1992, हिन्दी थियोजिकल लिटरेचर कमिटी, पृ०-151-180
14 वाल्मीकि-रामायण, युद्धकाण्ड, 84.14 एवं 30
15 वाल्मीकि-रामायण, युद्धकाण्ड, 43.1-2
16 महाभारत, सभापर्व, 17.18.

परम्परा के लुप्त होने के कारणों के रूप देखे जा सकते हैं। परिवार में अनेक संकटों को शमन करने एवं पारिवारिक सुरक्षा एवं उन्नति के लिये कुलदेवी-देवता की आराधना करनी ही चाहिये।

श्रीमद्भागवतपुराण में कहा गया है- 'जिस प्रकार अगाध सरोवर में असंख्य छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर धावित होते रहते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वर से विविध अवतार हुआ करते हैं।'[17] उसी प्रकार संसार के कण-कण में उसी परमात्मा के अंश रचे-बसे है। लोगों के योगक्षेम की रक्षा करने के लिये भगवान् कभी निर्गुण-निराकार रूप में तो कभी सगुण-साकार रूप में अपनी उपस्थिति देते हैं। परमात्मा निराकार रहकर भी सब कार्य करते हैं, वे संसाररूपी दिव्यमूर्ति धारण पर भक्तों की अभिलषित कामनाओं की पूर्ति हेतु विविध रूपों में मूर्ति स्वरूप में विराजते हैं, चाहे भक्त जिस रूप में उन्हें सगुण आकार प्रदान किये हों। पिछले अध्याय में यह वर्णित है कि ईश्वर अपने आकृति विशेष अथवा प्रतिमाओं में पूजित अवश्य होते हैं लेकिन वे तो भक्तों के हृदय में वास किया करते हैं। मूर्तिपूजा के बारे में ऋग्वेद के कहा गया है-

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥[18]

इस मन्त्र में 'पुरम्' का अर्थ शरीर-मूर्ति है। लोगों को अपने बाल-बच्चों के साथ मूर्ति पूजा करनी चाहिये। मन्त्र में 'अर्चत' तीन बार व्यवहृत हुई है, जिसका भाव है-शरीर, मन और वचन से मूर्तिपूजा करना उचित है। मूर्तिपूजा करने वाले सनातनधर्मी अपनी भावनानुसार अपने रक्षक-देव के विविध रूपों में परम-तत्त्व को ही देखती है।

***

17 श्रीमद्भागवतपुराण, 1.3.26- अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाविदासिनःकुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥26॥
18 ऋग्वेद, 8.69.8.

पाठकीय प्रतिक्रिया- पृ. 3 का शेषांश

का समाधान किया होगा इसका अंदाजा पत्रिका को पढ़कर हो ही जाता है। पूरे अंक में कहीं भी कोई हीनता नहीं है। और सभी जगह पर उचित संदर्भ दिए गए हैं इतना ही नहीं, सरल एवं स्पष्ट और व्याकरण युक्त भाषा भी धर्मायण की अनोखी विशेषता है। वैदिक धर्म और भारत की सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने में धर्मायण का बहुत बड़ा योगदान होगा। आपको और इस विशेषांक में आलेख देने वाले सभी विद्वतजनों का मैं हार्दिक अभिवादन करता हूँ और आपका अभिनंदन करता हूँ।

ली.
भवदीय
श्री धर्मेंद्रसिंह गेमलसिंह राणा
अधिक जिला न्यायाधीश
जिला: बोटाद (गुजरात)

उत्कलीय लोकसंस्कृति

डॉ. ममता मिश्र 'दाश'
संस्थापक सचिव,
प्रो. के.वी. शर्मा रिसर्च इंस्ट्च्यूट, अड्यार, चेन्नई

सांस्कृतिक रूप से उत्कल प्रान्त अत्यन्त समृद्ध रहा है। समुद्र के तट से लगा हुआ यह प्रदेश अपनी भाषा, लिपि, शासकीय स्वायत्तता का अक्षुण्ण रखने में किसी भी अन्य भू-खण्ड की अपेक्षा आगे रहा है। प्राचीन काल का कलिंग जनपद यद्यपि संस्कृति की दृष्टि से गौड़, कामरूप, मिथिला आदि पूर्वोत्तर प्रदेश के साथ मिला हुआ विष्णुक्रान्ता क्षेत्र का अंग है तथापि भगवान् जगन्नाथ की उपासना की प्रबलता यहाँ दिखाई देती है। वे लोक-आराधित देवता हैं, दइतापति कहलाते हैं, शबरों के स्वामी हैं अतः उत्कल प्रदेश में लोक की मान्यता सर्वत्र प्रतिष्ठा पा चुकी है। किसी प्रदेश की स्वतंत्र भाषा एवं लिपितत्त्व उस क्षेत्र की संस्कृति को परिरक्षित करने वाले महान् कारक होते हैं। इस अर्थ में उत्कल धन्य है। वहाँ के लोकाचार, लोकसाहित्य लोककला आदि विषयों पर इस आलेख में प्रकाश डाला गया है।

"लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु" आशीर्वचन के एक प्रमुख श्लोक का अंशविशेष है। लोगों की खुसी सभी का श्रेय है। पर लोगों का सुख अगर सब का ध्येय है तो, सभी की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक सन्तुष्टि आवश्यक है। तभी जाकर सब सुख में रह सकते हैं और लोक परम्परा विना रुकावट के आगे बढ सकती है। वेद से लेकर पुराण तक, भगवद्गीता से लेकर भागवत तक लोक और लोक परम्परा की चर्चा। वेद, शास्त्र, पुराण, विज्ञान सब लोगों के लिये ही तो बनाया गया है।

भारतीय संस्कृति वैदिक और लौकिक संस्कृति का मिला-जुला रूप है। कुछ आधार पर देखा जाय लौकिक संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये या लौकिक संस्कृति को उज्जीवित रखने के लिये ही वैदिक संस्कृति बनायी गयी है। लोक-संस्कृति वैदिक संस्कृति से पूरी तरह अलग तो नहीं है, वैदिक संस्कृति के द्वारा नियन्त्रित भी नहीं है।

इस निबन्ध में उत्कल प्रान्त की लोक-परम्परा के ऊपर कुछ आलोकपात करने की कोशिश की गयी है।

सर्वभारतीय स्तर पर देखा जायतो हम सबकी जीवनशैली में बहुत कुछ समानता है। हाँ, भौगोलिक स्थिति के अनुसार या कृषि के आधार पर हमारे खाने-पीने-पहनने में कुछ विविधता पायी जाती है। ऋतु के अनुसार पोषाक चाहिये तो उत्पादन के अनुसार भोजन।

लोक का अर्थ व्यापक है। **'लोकस्तु भुवने जने' इति अमरकोश।** 'लोक' शब्द व्यापकार्थक है। चाहे

वेद हो या किसी जनजीवन, धर्म हो या वर्ण लोक शब्द के अन्दर सब आ जाते हैं।

उत्कलीय लोक परिचय

दक्षिण में आन्ध्रप्रदेश, उत्तरपूर्व में पश्चिमबंग, पश्चिम दिशा में मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ की स्थिति के कारण इन सब प्रान्तीय भागों में नजदीक राज्यों का प्रभाव बहुत पड़ा है। पर समुद्री तट और समतल स्थल में बसे लोगों की जीवमशैली मुख्यतः उत्कलीय जीवनशैली ही कहा जा सकता है। पारम्परिक जीवनशैली यहाँ लगभग अक्षुण्ण रही है। हाँ, आधुनिक जीवनचर्या का प्रभाव बहुत हद तक सुप्रतिष्ठित परम्परा को कलुषित करने लगा है।

यह प्रदेश जिसका एक नाम ओडिशा है, जिसके कुछ प्रमुख अंचलों में जनजाति या आदिवासियों का स्थान प्रमुख रूप से रहा है, जैसे दक्षिण भाग में कोरापुट, पश्चिम भाग में फूलबाणी और कलाहाण्डि; जिसका और एक नाम उत्कल भी है– उत्कृष्ट कला। इनमें से कुछ जनजातियाँ शहरी सभ्यता संस्कृति के साथ मिलने लगे हैं, पर कुछ जनजातियाँ अपने पहाड़ों में सीमित रहकर अपनी स्वतन्त्रता जारी रखना पसंद करते हैं।

भिन्न-भिन्न वर्ग के लोग जैसे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इनके भिन्न-भिन्न प्रजाति उत्कलीय लोक परम्परा के अविच्छेद्य अंग हैं। पर उपनाम की प्रथा रहने के यानि मुख्य नाम के उपरान्त जो पारिवारिक नाम रहता है उससे सभी के वर्ग के बारे में थोडा बहुत पता चल जाता है। जैसे महापात्र, आचार्य, मिश्र, दाश, महान्ति, पृष्टि, साहु आदि पारिवारिक नाम अपने अपने कुल का परिचायक होता है।

कारण जो भी हो विगत दो सौ तीन सौ वर्षों से पश्चिम बंग और आन्ध्रप्रदेश के कुछ परिवार उत्कल में बस चुके हैं। उत्कलीय जनजीवन इनसे प्रभावित तो है ही, पर कहीं न कहीं वे अपना स्वतन्त्र परिचय भी बनाये रखते हैं।

लोकधर्म :

इस प्रदेश के मुख्य देवता श्रीजगन्नाथ होने के कारण ज्यादा तरह वैष्णव धर्म के प्रभाव से लोगों की जीवनधारा प्रभावित हुई है। यहाँ श्रीजगन्नाथ पुरुषोत्तम हैं और श्री जगन्नाथ के क्षेत्र पुरी श्रीक्षेत्र भी है (**अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः**)। पर ग्रामीण अंचलों में शैव और शाक्त पूजा मुख्य रूप से प्रचलित है। हर किसी ब्राह्मण गाँव में एक छोटा सा मन्दिर होगा। इन देवालयों में मुख्य रूप में शिव भगवान् पूजित है। पर सभी गाँवों में एक स्वतन्त्र ग्रामदेवता रहते हैं जो गांव के हर एक व्यक्ति के सुख दुःख के साथी होते हैं।

हर विपत्ति में माँ का स्मरण कर विपत्ति से उद्धार पाने की भीख माँगते हैं। कुछ अंचल ऐसे भी है जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ आती है। इन लोगों के लिये एकमात्र सहाय ग्रामदेवता ही है। देवी होने के कारण कुछ लोग 'ग्रामदेवती' भी बोलते हैं।

इन सब देव-देवियों की प्रतिमूर्ति शायद किसी मूर्ति कला या वास्तु विद्या के नियम से प्रभावित नहीं है। कभी नाम से वैष्णवी प्रतीत होती है, तो कभी शक्ति। ज्यादा तरह 'मंगला' नाम पर बहुत ग्राम देवियाँ पायीं जाती हैं। स्थल विशेष पर देवियों का नाम– खम्बेश्वरी (सोनपुर), बुढी ठाकुराणी (अनुगुल), कन्धुणी (सोरडा), माणिकेश्वरी (बाडखेमुण्डी), कालुआ (महुरी), बाउती (खल्लिकोट), चेञ्चकाई (केन्दुझर), रावायणी (नीलगिरि, बालेश्वर), जागुलेई (पुरी) आदि।

लोकधर्म पर आदिवासी जनजातियों का प्रभाव बहुत है। श्रीजगन्नाथ शबरदेवता जो ठहरे। ज्येष्ठ पौर्णमी (स्नान-पूर्णिमा) से लेकर श्रीगुण्डिचा तथा रथयात्रा के अन्तिम पर्याय यानी चतुर्धा मूर्ति के अन्दर जाने तक श्रीजगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा, सुदर्शन की पूजा मुख्य सेवक के हाथ से 'दइतापति'यों के हाथ

जाता है, जो शबर वंशज हैं। कुछ झाड-फूंक मन्त्रों में शबरुणी, केलुणी आदि शब्द बहुत मिलते हैं। श्रीजगन्नाथ मन्दिर के अन्दर उत्तर द्वार के पाश एक 'शीतला' देवी का मन्दिर है, जहाँ लोग घर में वसन्त जैसी वीमारियाँ होने से पूजा के लिये जाते हैं। वैसे एक देवी भी 'बुढी मा' के नाम पर पूजित है श्रीमन्दिर में। रोगनिवारण के लिये ही भक्त सब जाते हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र के अन्दर जाने से पहले 'बाटमंगला' (मंगला जो बाट यानी कि पथ या प्रवेश द्वार पर रहती है) मन्दिर हो कर वहाँ प्रार्थना कर के भक्त क्षेत्र के अन्दर प्रवेश करते हैं। श्रीमन्दिर के भीतर भी एक मंगला मन्दिर है जो वैष्णवी ही है।

जनदेवता की पूजा में सागर, नदियाँ, पहाड़, पर्वत, जंगल, खेत, पेड़ सब कुछ सामिल है। इसके साथ-साथ प्रकृतिपूजा, पितृपूजा, मातृपूजा भी लोक जीवनधारा में आदृत है।

कुछ सामूहिक मेला है जैसे धनुयात्रा (मकर-संक्रान्ति, बडगड में 10 दिन तक कृष्ण लीला चलती रहति है), मुनि मेला (मार्गशीर्ष महीने की मकर-संक्रान्ति, बालेशोर), पाटुआ यात्रा (केन्द्रापडा मकर-संक्रान्ति), झामुयात्रा (विषुव-संक्रान्ति, कटक), छउ नाट (वैशाख मास, मयूरभञ्ज) आदि में बहुत लोग इकट्ठे होते हैं, न कि भक्त या सहृदय। इस भी में न जात देखा जाता है नो लोगों की आर्थिक स्थिति। यहाँ सर्वसाधारण जो इकट्ठे होते हैं उन्हें 'लोक' ही कहा जाता है।

पर एक स्वतन्त्र व्यवस्था उत्कलीय जीवनधारा को नियन्त्रण किया है। वह है 'भागवत टुङ्गी'। लगभग सप्तदश शताब्दी को हर एक गाँव में एक-एक भागवत टुङ्गी होती थी। यहाँ प्रतिदिन भागवत (जगन्नाथ दास कृत ओडिआ भागवत) की पूजा होती है और पढाई भी होती है। यहाँ के अधिष्ठाता देव है 'भागवत गोसाइँ' (भागवत गोस्वामी), मतलब भागवत पोथी। यहाँ शाम को लोग इकट्ठे होते हैं। कुछ बौद्धिक आलोचना होती तो है, पर कभी-कभी गाँव के छोटे-मोटे झगडों का समाधान भी किया जाता है। हाँ, लोग शहर की ओर भागने के कारण 'भागवत टुङ्गी' अपना अस्तित्व खोने लगी है।

व्रत और ओषा

लोक-धर्म का एक विशेष अंग है 'ओषा'। ओषा शब्द संस्कृत उपवास शब्द से निष्पन्न है। सालभर में ऐसे कुछ सौ से अधिक ओषा होगी जो उत्कलीय नारियों के द्वारा मनायी जाती है। जैसे कुक्कुटी व्रत, धानमाणिका ओषा, कांजीअँला ओषा, बुधेई ओषा, खुदुरुकुणी ओषा आदि। इन व्रत या ओषाओं में ज्यादा तरह देवी माँ की पूजा होती है। यहाँ पर देवियाँ जैसे मंगला, बुधेई, षष्ठी माँ, रावाणी, वासेली, वनदेवी, चण्डी अदि पूजित होती हैं | बहुत स्थान पर सुपारी को भगवान् या देवी की कल्पना करके पूजा की जाती है। सास से बहू तक, माँ से बेटी तक यह सब पूजाएँ हमारे पास पहुँची हैं।

कभी राजा राणी के रूप में, कभी नलदमयन्ती के आधार पर इन सब ओषाओं की पुष्टि के लिये बहुत कहानियाँ भी लिखी गयी हैं। ये सब कहानियाँ गद्य और पद्य रूप में हमारे पास पहुँची हैं। कुछ कहानियाँ सिर्फ मौखिक रूप से जीवित हैं। इनमें शायद कुछ ही व्रत होंगे, जो स्मृति-शास्त्र पर आधारित हैं। लेकिन बहुत सारी पूजाएँ लोक परम्परा पर चलती आ रही है। कुछ ओषा कुमारियोंके द्वारा पालित है तो कुछ सीमन्तिनियों के द्वारा, कुछ विधवाओं के द्वारा।

जैसे, रेखापञ्चमी (भाद्रव मास शुक्लपक्ष को घर के दरवाजों पर भैरवपूजा), दक्षिणायन संक्रान्ति पर दीवार पर रंगोली लगाकर दीवारों की पूजा, षष्ठी ओषा के अवसर सिलवट्ट की पूजा (यहाँ सिलवट्ट को आयुष की देवी मानी जाती है) की जाती है, दशहरा के दिन के

घर के सारे व्यवहृत द्रव्यों की पूजा, हलषष्ठी को हल की पूजा, मंगल बार को देवी के नामपर बाटपूजा (जिस रास्ते पर हम पैदल जाते हैं उसी रास्ते को गोबर से धोकर रंगोली डालकर वहाँ कुछ गोबर प्रतिमा के रूप में सजाकर उसके ऊपर एक सुपारी रखते हैं, जिन्हें बाटमंगला बोलते हैं), अन्न को ही लक्ष्मी मानकर धान और चावल की पूजा आदि होती है। वास्तविक रूप में देखा जाय तो दैनन्दिन जीवन में जो व्यवहृत पदार्थ, उन सब को सम्मान देने के लिये ये सारी पूजाएँ हमारी जिन्दगी से भी जुड़ गयी हैं।

प्रतिदिन चूल्हे की पूजा, कार्त्तिक महीने में तुलसी की पूजा, वटसावित्री में पेड़ की पूजा, 'द्वितीया ओषा' में पुष्करिणी या नदी तट पर बालुका आदि रखकर पूजा आदि यही दर्शाता है कि परिवेश में या दुनिया में हम जिनसे उपकृत हैं, वह सब पूजा के योग्य हैं। पूजा करने से चाहे पत्थर से बना सिलवट्ट हो या लकड़ी से बना दरवाजा, इन सब के लिये सबका आदर सम्मान बढेगा। परम्परा में एक पर्व है व्यञ्जनद्वादशी जिस दिन कम से कम 56 प्रकार की सब्जियाँ बनायी जाती हैं। पर इसका अनुपालन मठ या मन्दिरों में किया जाता है।

ऐसे कुछ पूजा या व्रत उत्कल प्रान्त में बहुत लोकप्रिय होने के कारण उत्कलीय स्मृतिकार शतानन्द (एकादश शताब्दी) ने अपने शतानन्दसंग्रह में, बृहस्पति सूरि (चतुर्दश शताब्दी) ने अपनी कृत्यकौमुदी, मुरारि मिश्र (षोड़श शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ 'स्मृतिचन्द्रिका' में सप्तपुरी अमावास्या (भाद्रवमहीने की अमावास्या तिथि), प्रथमाष्टमी (मार्गशीर्ष महीने की कृष्णाष्टमी), शीतलषष्ठी (चैत्र महीने कृष्ण षष्ठी तिथि को शिव-पार्वती का विवाहोत्सव अनुष्ठित होता है) आदि पर्वों का नाम और पूजा पद्धति के बारे में उल्लेख कर इन सबको एक शास्त्रीय मान्यता दी हैं।

उत्कल प्रान्त का एक स्वतन्त्र उत्सव है रज पर्व जिसे ज्येष्ठ महीने की संक्रान्ति तिथि के साथ इसके आगेवाला दिन और पीछ वाले दिन को मिलाकर तीन दिन तक मनाया जाता है। चौथे दिवस पर वसुमती स्नान पालित होता है। धरित्री माँ की पूजा की जाती है। विश्वास है कि अब वसुमती माता रजस्वला रहती है। तो खेती का काम इन दिनों में नहीं होता है। पर एक सामाजिक दृष्टिकोण से हम देखें तो, यह पर्व सिर्फ स्त्रियों के लिये रहता है। इस में पूजा करने की कुछ स्वतन्त्र व्यवस्था नहीं है। पर कुछ विशेष मिठाइयाँ बनती हैं। कुछ परिवार ऐसे भी हैं कि इन दिनों घरकी स्त्रियों को कुछ भी काम करने को नहीं दिया जाता है। या तो पूर्व दिनों से सब्जी आदि काट कर रखा जाता है। खाना आदि घर के पुरुष बनाते हैं। घर की बेटियाँ नये वस्त्र पहन कर झूला झूलती हैं।

हर पूजा में दूर्वा, अक्षत, आम की डाली, फूल, बदरी पत्ता आदियों का व्यवहार सर्वसाधारण है। हर पूजा के लिये मूर्ति की परिकल्पना नहीं हो सकती है, तो एक सुपारी को प्रतिनिधि बनाकर पूजा की जाती है।

लोक-साहित्य

शास्त्रीय परम्परा पर आधारित कुछ ज्योतिष, स्मृति, गणित, संस्कृत महाकाव्य, गीतिकाव्य आदि ग्रन्थ ओडिआ भाषा में अनूदित है। पर महाभारत (सारलादास-15-16 शताब्दी), भागवत (जगन्नाथ दास- 16 शताब्दी) आदि मौलिक रचनाएँ भी हैं। वैदेहीश-विलास (उपेन्द्र भञ्ज), रसकल्लोल (दीनकृष्णदास), आदि महाकाव्य ओडिआ साहित्य को समृद्ध करते हैं।

पुराण, इतिहास, काव्य, महाकाव्य आदियों के साथ ओडिआ साहित्य के भण्डार को समृद्ध करती हैं कुछ विशेष रचनाएँ जो शायद दूसरे आंचलिक साहित्य में उपलब्ध नहीं है जैसे कोइलि (दूत काव्य), चउपदी (हिन्दी में चौपाई), चउतिशा, बोलि, वचनिका, भजन, व्रतकथा आदि।

पर कुछ लोकसाहित्य भी ओडिआ साहित्य और लोकजीवन पर आधारित हैं।

विवाह-मण्डप पर मंगल-गीत, विवाह के बाद बेटी के विदा होने के समय कांदणा गीत, बच्चों को खाना खिलाते या सुलाने के समय माँ-दादियों की लोरियाँ, बड़बड़िआ डाक, हळिआ गीत, बउळागाई गीत, झुलणासुन्दरी गीत, दोळि गीत, शगड़िआ गीत, केळाकेळुणी गीत, शबर-शबरुणी गीत, घुमुरा गीत, डालखाई गीत, बच्चों के लिये क्रीडा गीत, सुआंग गीत, प्रहेळिका, कळसा, आदि लोकगीत बहुत लोकप्रिय है। वास्तव में देखा जाय ये सब गीत कहीं पर उल्लिखित नहीं हैं। पुरुषानुक्रम यह हमारे पास आ पहुँचा है। विगत सौ सालों में कुछ प्रतिष्ठित विद्वान् गाँव-गाँव घूम कर कुछ लोकगीत संग्रह करने में समर्थ हुए है। पर बहुत कुछ मौखिक आधार पर ही जीवित है। इन सबको हम गद्यमय, पद्यमय और नाट्यमय के रूपमें तीन भागों में बाँट सकते हैं।

ग्रामीण लोगों के बीच कुछ मुहावरें प्रचलित है, जिन्हें हम चुटकुला भी कह सकते हैं, प्रान्तीय भाषा में 'ढगढमाळि' बोलते हैं। एक दो पंक्तियों में ये सब बहुत ही सारगर्भक हैं और प्रतीकात्मक भी। ज्यादा तरह मुखश्रुति के आधार पर जीवित रही हैं ये सब 'ढगढमाळि'। सामाजिक परम्परा में सुधार लाने के लिये, लोगों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिये, भविष्यत् को जानने के लिये ये सब प्रयुक्त है।

ज्यादा तरह समाजोपयोगी वचन 'दनाइ' नाम पर है तो कृषिभित्तिक या भविष्य वचन 'खना' के नाम पर उत्सर्गीकृत हैं।

"आदर न थाइ येउँ भोजन।
निश्चिन्त न होइ येउँ शयन॥
गृहिणी न थाइ येउँ भवन।
चित्त थय नाहिँ येउँ भजन ॥
बोले दनाइ अति हीनिमान।

आदर के विना अगर खाना परोसते या खाते, अगर मनमें चिन्ता या भय रख कर सोते, अगर घर गृहिणी के विना हो, अगर भजन यानि पूजा करते समय चित्त स्थिर नहीं करते तो ये सब निरर्थक हैं। दनाइ बोलते हैं इन सब कार्यों में मान (सम्मान) हीन (न्यून) हो जाता है।

"मधुमासे तेर दिने रहे यदि रहे येबे शनि।
खना कहे से वत्सर हुए शस्य हानि ॥"

मधुमास यानी चैत्र महीने के त्रयोदश तिथि पर शनि ग्रह का प्रचलन है तो खना के वचन के अनुसार उस वर्ष सस्य ठीक तरह नहीं होता है। वास्तुशास्त्र की सूचना देते हुए एक गाना –

उत्तर दुआरी हुअन्ति रोगी।
दक्षिण दुआरी हुअन्ति भोगी ॥
पूरुब दुआरी मिळिब इष्ट।
पश्चिम दुआरी पाइब कष्ट ॥

घर का मुख्य दरवाजा अगर उत्तर दिशा की ओर हो तो घर में रोग बना रहता है, दक्षिण की की ओर हो तो भाग्यवान् होते हैं, पूर्व दिशा की की ओर हो तो अभीष्ट प्राप्ति होती है। पश्चिम की ओर हो तो घर में कष्ट बनाया रहता है।

कुछ लोकोक्तियाँ सामाजिक होती हैं –

"तु धरिथिबु बाइजि आटिका,
मुँ धरिथिबि डांग"।

घनिष्ठ मित्रता को दर्शाते हुए यह कहता है कि 'अगर तेरे हाथ में मिट्टी का वर्तन (आशौच क्रिया के अवसर पर जिस पात्र में कुछ खाना रखकर श्मशान में छोड़ आते हैं) हो तो मेरे हाथ में लकड़ी होगी ताकि मैं उसे कुत्ते बिल्लियों से रक्षा कर सकूँ, और उसी लकड़ी से वर्तन को तोड़ भी सकूँ काम समाप्त होने के बाद।'

रोग उपशम के लिये कुछ मन्त्र अभी भी प्रचलित है। छोटे छोटे बच्चों को सर्दी, बुखार लग जाय या

चिता संक्रांति के लिए

बच्चों को लेकर लोग वैद्य के पास नहीं; बल्कि एक ऐसे व्यक्ति के पास जाते हैं, जो कुछ मन्त्र बोलकर बच्चे को झाड़ देता है। नजर उतारने के लिये तो जरूर इन्हीं के पास ही जाते हैं। एक मन्त्र-

"ॐ बिषनीळा, चउषठि सर्पा, रवीश घा, मुखे मिला, हरबिषमिला, हरबिषमिला। हरबिषमिला काहार आज्ञा। काउँरी कामचण्डी, ज्ञानदेई मालुणी, निताई धोबणी, किटाई मा, पत्र शउरुणी र कोटिए आज्ञा"।

इन सब मन्त्रों में राम-सीता, हर-पार्वती, नरसिंह, हनुमन्त, ब्रह्मनिरञ्जन, धर्मदेवता आदियों का नाम तो है पर शबर, शबरुणी, मालुणी, धोबणी आदि शब्द अधिक रूप में पाये जाते हैं।

खना के नामपर बहुत सी कहावतें है, पर आजकल कुछ लोग इसको अन्धविश्वास का नाम लेकर अवहेलना करते हैं।

लोककला

गुफाओं से लकर अभिलेख तक देवालयों से लेकर प्रस्तर तक जहाँ भी देखो तो प्रतीत होता है कि चित्रांकन करने में मानव की अभिरुचि हमेशा रही है। प्रकृति के सारे विभाव और मानव जीवनधारा का अनुशीलन कर चित्रांकन किया जाता था। बाद में देवी देवताओं का चित्र करना मुख्य साधन बन गया शिल्पियों के लिये। मन्दिर गात्रों में ये भगवान की मूर्तियों में वास्तु कला या चित्र कला की पराकाष्ठा दिखायी देती है। पर इन सब चित्रकला के आधार पर जो घरों में या घरके आंगनों में, घर के दीवारों में जो चित्र बनाये जाते हैं हम इसे लोककला ही कह सकते हैं।

कार्तिक महीने में तुलसी माँ की पूजा करती हुई व्रतधारी महिलाएँ तुलसी पेड़ के सामने बहुत चित्र अंकन कर पूजा करती हैं इनमें मुख्यतः श्रीजगन्नाथ, श्रीबलभद्र, माँ सुभद्रा के चित्र अंकन करते हैं। कभी कभी श्रीकृष्ण और राधा देवी का चित्र भी मध्य भाग में रखकर बाकी फूल पत्तों का चित्र बनाती हैं। व्रत करने वाली महिलाएँ तुलसी पेड़ के सामने श्रीजगन्नाथ या श्रीकृष्ण की चित्र-पूजा किये विना आगे बढ ही नहीं सकती। मार्गशीर्ष महीने के हर गुरुवार महालक्ष्मी की पूजा होती है। हर किसी गोष्ठी की महिलाएँ इसका पालन करती हैं, उत्कल के हर प्रान्त में यह मनाया जाता है। और यह एक अच्छा अवसर होता है रंगोली बनाने का, अपनी कलाकृति प्रदर्शन करने का। हाँ, स्थानभेद से चित्रकला में विविधता पायी जाती है पर महालक्ष्मी के उद्देश्य में रंगोली डालना तो अनिवार्य जैसा है। चावल को कुछ देर तक भिगो कर उसे पीस कर यह रंगोली बनायी जाती है। पूजा के इस अवसर

धान की जुट्टी- लक्ष्मी का प्रतीक

पर बेंत की एक छोटी-सी पेटी में रंग लगाकर धान भरकर पूजा की जाती है। धान की जुट्टी बनाकर उसे महालक्ष्मी के पास लटका कर पूजा की जाती है। प्रान्तीय भाषा मे इस रंगोलि का नाम 'झोटि' या 'चिता' है।

महालक्ष्मी पूजा के अतिरिक्त दूसरे अवसर पर भी चित्र बनाया जाता है। रेखापञ्चमी (भाद्रव शुक्लपक्ष पंचमी) दरवाजे पर भैरव

मार्गशीर्ष की झोटि (चिता), रंगोली

महालक्ष्मी का भित्ति-अंकन

देव, श्रीगणेश, महालक्ष्मी का चित्र बनाकर पूजा करते हैं। दरवाजे की पूजा घर को हर विपत्ति से सुरक्षा देने के लिये की जाती है।

चिता-संक्रान्ति (दक्षिणायन संक्रान्ति) के दिन दीवार पर काला या गैरिक रंग लगाकर इसके पर सफेद रंग की रंगोली बनायी जाती है। केन्द्र स्थल पर महालक्ष्मी को बिठाकर चारों तरफ गहनें, फूल, धान की जुट्टी आदि बनाकर पूजा करते हैं। घर की औरतों को महीना तक लग जाता है इसे बनाने में।

शादी-ब्याह में कलश के उपर चित्र, दिवारों पर, घर के प्रवेशद्वार में चित्र बनाते हैं, पर यह लगभग एक अभिज्ञ चित्रकार के द्वारा करवाते हैं।

कुछ परिवार में स्नानोपरान्त शिलवट की पूजा की जाती है, तो एक छोटी-सी रंगोली भी डालते हैं। भगवान को प्रसाद उत्सर्ग करते समय। गुरुजनों को खाना परोसने से पहले एक छोटी-सी रंगोली भी रची जाती है (लगभग एक उलटा ४-)। हाँ, यह सब आजकल बहुत दुर्लभ होने लगा है। पितृ-मातृ-श्राद्ध के अवसर पर वैश्वदेव के लिये एक स्वतन्त्र चित्र बनाया जाता है।

कुछ स्थान पर अक्षय-तृतीया (वैशाख की शुक्ल तृतीया) मिट्टी की छोटी छोटी कलसों में सफेद रंग लगाकर उसके ऊपर गैरिक रंग मैं चित्रांकन कर पूजा करते हैं। इन कलशों में फल आदि पूजा कर बच्चों को दिया जाता है।

उत्कलीय वस्त्रों पर कला की कृति बहुत ही प्रसिद्ध है। खण्डुआ, सम्बलपुरी, बोमखाइ आदि सारियाँ इनकी कला कृति के लिये बहुत लोकप्रिय रही हैं

मिथुन संक्रान्ति के अवसर पर उड़ीसा के रजपर्व की झाँकी

लोकसंगीत

ओडिशी संगीत शास्त्रीय संगीत के अन्तर्भुक्त है, जो ज्यादा तरह नियमबद्ध ही हैं। ओडिशी के अलावा कुछ गानें हैं जो भिन्न भिन्न अवसर पर गाये जाते हैं। साहित्य की दृष्टि से इन गानों का महत्व होने के कारण उस प्रसंग में कुछ दिया गया है। पर ये गानें संगीत की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यात्रा (Open theater), दास-काठिआ (दो छोटे लकड़ी की सहायता से), साहियात (सिर्फ जगन्नाथ क्षेत्र में किया जाता है), पाला आदि संगीत की दृष्टि से बहुत मायने रखते हैं। इनमें से पाला और दासकाठिआ मंडप के ऊपर ही किया जाता है। इन सबके कलाकार शिक्षाप्राप्त और अभिज्ञ होते हैं।

लोकक्रीडा

घर के अन्दर (जिसे हम indoor game बोलते हैं) कौडी खेल, गोडि खेल (छोटे-छोटे कंकड को लेकर खेल), तो बाहार पुचि खेल, कटा खेल, झूला आदि लडकियों के लिये होता है तो लडकों के लिये आलि खेल, बागुडि (खो-खो जैसा), गोटि डाबल (गिलि दण्डा), सन्तरण आदि प्रसिद्ध है।

बड़ों का अभिवादन भूमिष्ठ प्रणाम के साथ किया जाता है। एक सर्वानुसम्मत आशीर्वाद वचन है सीमन्तिनियों के लिये– 'अह्य सुलक्षणी होइ था'। तुम सुलक्षणी बनी रहो। बच्चों के लिये साधारण आशीर्वचन है 'बुढाटिए /बुढीटिए (बालिकाओं के लिये) होइ था'। दीर्घायुष की कामना में ऐसा आशीर्वाद देते हैं।

इन सब आधारों को 'स्थालीपुलाक न्याय' के रूप में कुछ परिवेषण किया गया है। एक-एक शृंखला को लेकर एक एक किताब लिखी जा सकती है। कुछ चुने हुए विषयों को ही सम्मिलित किया गया है। अगर इस निबन्ध को पढकर उत्कलेतर विद्वानों के मन में उत्कलीय संस्कृति के विषय में जानने के लिये थोड़ा-सा आग्रह पैदा होगा तो समझूं मेरा श्रम सार्थक हुआ।

निबन्ध को एक प्रसिद्ध लोकोक्ति से सम्पूर्ण करना चाहती हूँ –

"गाइ जाणिले गीत सुन्दर।
बान्धि जाणिले मथा सुन्दर
कहि जाणिले कथा सुन्दर।।"

संगीत का अर्थ जैसा भी हो, अगर कोई उसे ठीक तरह गा सकता है तो गाना सुन्दर है। वैसे केश जैसा भी हो अगर उसे कोई ठीक तरह बांध सकता है तो चेहेरा सुन्दर। समझा बुझा कर कोई बोल सकता है तो वचन भी सुन्दर होता है।

***

उत्तराखण्ड के लोक देवता

डॉ. ललित मोहन जोशी

विभागाध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबन्धन संस्थान, एम.आई.टी. ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), अध्यात्म में विशेष अभिरुचि के अतिरिक्त भारतीय ज्योतिष का ज्ञान। सम्पर्क- 997800872, Email: lmjalmora@gmail.com पता- गली न. 6, प्रगति विहार, निकट रघुनाथ मन्दिर, ऋषिकेश (उत्तराखण्ड)

उत्तराखण्ड देवभूमि के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ की हिमालयीय शृंखलाओं में वास करने वाले पृथ्वी पर ही स्वर्ग का आनन्द लेते हैं। स्कन्द-पुराण का केदारखण्ड इस क्षेत्र की आध्यात्मिक महिमा ओतप्रोत है। यहाँ जब सीमित क्षेत्र की घाटियाँ होने के कारण लोक-देवताओं और देवियों के अनेक रूप उभरे हैं। एक विशेष बात है कि कुछ लोक देवता ऐसे हैं, जो हिमालयीय शृंखलाओं से होते हुए नेपाल, मिथिला तथा आसाम तक समान रूप से मान्य हैं। जब हम यहाँ के भुमिया लोक देवता का स्वरूप देखते हैं तो मिथिला के भुँइयाँ की याद आ जाती है। यह आश्चर्यजनक है कि यहाँ के लोकदेवताओं के विशाल मन्दिर भी बन गये हौं जो पूरे क्षेत्र के लिए आस्था के केन्द्र हैं। लेखक ने इस आलेख में ऐसे लोक देवताओं तथा देवियों के स्वरूप पर प्रकाश डाला है है। साथ ही, उनके द्वारा प्रेषित चित्रों से आलेख की प्रामाणिकता बढ़ गयी है।

लोक देवी-देवताओं पर जन मानस का विश्वास प्रारम्भ से ही रहा है। उत्तराखण्ड के लोक देवी-देवता, जिन्हें कुल देवी-देवता अथवा इष्ट देवी-देवता के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी से पूजते चले आ रहे हैं, उन पर स्थानीय लोगों का विश्वास दृढ़ है। यहाँ अनगिनत स्थानीय लोक देवी-देवता हैं। ये देवी-देवता यहाँ की संस्कृति के भी प्रतीक हैं। घर में कोई भी शुभ कार्य करने से पूर्व इनके स्थान विशेष पर उपस्थित होना अनिवार्य ही है। यहाँ लोक देवी-देवता का आशीर्वाद लेकर ही मंगलकार्य किये जाते हैं। लोक आस्था के इन मन्दिरों में लगी असंख्य घंटियाँ और अर्जियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि देवताओं ने लोगों की हर समस्याओं का समाधान किया है।

उत्तराखण्ड में पूजित देवी-देवताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) वैदिक/पौराणिक देवता

(2) लोक देवता

वैदिक/पौराणिक पूजा पद्धति के अन्तर्गत सभी कर्म-काण्ड विधिवत् सम्पन्न कराये जाते हैं। यथा जन्मोत्सव संस्कार, उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार आदि। यहाँ के निवासियों के अपने-अपने कुल पुरोहित हैं, जो यथा समय उपस्थित होकर विभिन्न संस्कारों को सम्पन्न कराते हैं।

उत्तराखण्ड के अन्तर्गत पौराणिक परम्परा यह भी रही है कि यहाँ पर भगवान शिव एवं शक्ति के रूप में

माँ भगवती यत्र-तत्र पूज्यनीय रही है। यहाँ स्थान-स्थान पर शिव मंदिर तथा माँ दुर्गा के मंदिरों की शृंखला देखने को मिलती है, चाहे वह कुमाऊँ का क्षेत्र हो या गढ़वाल का क्षेत्र।

कुमाऊँ क्षेत्र के अन्तर्गत पूजित देवियों में उल्लेखनीय हैं- पुण्यागिरी देवी, नंदा देवी, शीतलादेवी, रणचूला देवी, जाखन देवी, भ्रामरी देवी, ब्यानधूरा देवी, धौलादेवी, कोटगाड़ी देवी, झूलादेवी, स्याही देवी, उल्कादेवी, बानणी देवी, कसार देवी (लेखक की कुलदेवी), नैथाणा देवी, अन्यारी देवी आदि।

गढ़वाल मंडल के विभिन्न क्षेत्रों में पूजित देवियों की शृंखला इस प्रकार है- ज्वाल्पा देवी, नागिणी देवी, चन्द्रवदनी देवी, सुरखण्डा देवी, धारी देवी, हरियाली देवी, कुंजापुरी देवी, मनसा देवी (हरिद्वार), रेणुका देवी, चंडिका देवी (हरिद्वार) आदि।

इन सभी देवियों के पौराणिक मंदिर स्थल भी आज लोक देवियों के रूप में न केवल स्थानीय वरन बाहर के आगंतुकों (पर्यटकों) के द्वारा भी पूजे जाते रहे हैं। इन स्थानों पर भी अपनी मन्नत के लिए लोग आते रहते हैं, जिनमें विशेष रूप से मनसादेवी, चंडिका देवी, धारीदेवी प्रमुख हैं।

उत्तराखण्ड में लोक देवी-देवताओं की श्रेणी

उत्तराखण्ड में लोक देवी-देवताओं की कई श्रेणियाँ हैं। एक है- कुल देवता (इष्ट देवता), जिनको कुल (परिवार) के लोग पूजते चले आये हैं। दूसरे हैं- ग्राम देवता, जिन्हें पूरा गाँव पूजता चला आ रहा है। तीसरा हैं - वे देवता, जिन्हें समाज का हर व्यक्ति पूजता हैं। यहाँ अनगिनत लोक देवी-देवता हैं। माना जाता है कि ये प्राचीन देवता यहाँ के प्राचीन निवासियों -कोल, किरात, खस आदि के समय से ही पूजे जाते रहे हैं। इनमें नागराज, घंडियाल, नरसिंह, भूमिया या भूम्याल, भैरव, भद्राज और महासू, यक्ष, सौल्या, नगेला आदि देवता अपना विशेष स्थान रखते हैं। ये उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में पूजे जाते हैं। भगवान शिव और शक्ति के उपासक होने के अतिरिक्त यहाँ के लोगों में लोक-देवताओं की पूजा की एक समृद्ध परम्परा रही है।

लोक-देवता क्षेत्रपाल के रूप में

उत्तराखण्ड में लोक देवताओं को क्षेत्र की रक्षा के लिए भी नियुक्त किया गया है, ये देवता क्षेत्र रक्षा के प्रमुख माने गये हैं। ग्वालिया देवता, ग्वालों एवं पशुचारकों, पथिकों के रक्षक हैं। जौनसार क्षेत्र में पूजे जाने वाले महासू देवता न्याय के देवता है। क्षेत्र रक्षक देवताओं में कुछ देवता ऐसे भी हैं, जो लोगों को आवाज देकर आने वाली आपदा से आगाह भी करते हैं उन्हें बचाते भी हैं।

गढ़वाल का समाज उत्तरदिशाधिपति यक्षराज कुबेर को अपना संरक्षक, क्षेत्ररक्षक मानते हैं। सीमान्त ग्राम माणा (बद्रीनाथ से आगे) में मणिभद यक्ष की पूजा क्षेत्र रक्षक के रूप में होती है। पर्वत शिखरों पर घण्डियाल या घण्टाकर्ण यक्ष की पूजा होती है। टिहरी गढ़वाल की धार अकरिया पट्टी में घंटाकर्ण शिखर पर घण्टाकर्ण का थान है। मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक चलने वाली घंटाकर्ण की जात में उनके साथ उनके भाई लाट तथा होत भी चलते हैं पौड़ी के निकटवर्ती ग्रामों का भूमिया (क्षेत्रपाल) कण्डल यक्ष ही है। बाद में वही अपभ्रंश रूप में कण्डलिया था, कण्डोलिया कहा जाने लगा इसी तरह वीर पुरुषों की भी पूजा क्षेत्र रक्षक के रूप में होती है। इनमें पांडव, कत्यूरी राजा धामदेव, गुरु गोरखनाथ, गुरु सत्यनाथ, नागनाथ, जियारानी, तीलू रौतेला आदि शामिल हैं। इसी क्रम में कुमाऊँ में ग्वाल्ल देवता (गोलू देवता), भोलानाथ, सैमदेव, कैलविष्ट, हरु, गंगनाथ, सिटुवा-विटुवा आदि शामिल है।

ये लोक देवता आज भी रात्रि के समय स्थानीय

लोगों को जंगल पार करने में पूरी सहायता करते हैं।

लोक देवताओं का वर्गीकरण

उत्तराखण्ड के लोक देवताओं के प्रभाव क्षेत्र के आधार पर उनका वर्गीकरण मंडल विशेष (कुमाऊँ गढ़वाल), क्षेत्रीय, जनपदीय अथवा स्थानीय रूप में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इनके गुणों व स्वभाव के आधार पर भी इन्हें बाँटा जा सकता है, क्योंकि देवता के रूप में पूजित इन शक्तियों में कुछ उदात्त प्रकृति की होती है और कुछ अनुदान प्रकृति की अर्थात् इनकी अपनी-अपनी विशिष्ट प्रकृतियाँ अथवा स्वरूपात्मक विशेषताएँ भी हुआ करती हैं। कुछ उदात्त प्रकृति के तो ऐसे लोक देवता हैं जो कि सामान्य भेंट, पूजा, धूप-दीप नैवेद्य से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं किन्तु अनुदात्त प्रकृति के लोक देवता अपनी भेंट-पूजा के अतिरिक्त नियत रूप से पशुबलि भी चाहते हैं (यद्यपि वर्तमान में अनुदात्त प्रकृति लगभग समाप्त हो चुकी है)

इसी प्रकार, प्रकार्यों के स्तर पर भी इन्हें विभेद पाया जाता है अर्थात् कुछ तो प्रकृति से ही संतोषी, मंगलकारक, कष्टनिवारक एवं न्यायकारी वरदायी होते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं, जो प्रकृति से ही आतंक, बाधाएँ एवं संकटों के उत्पादक होते हैं। इनमें प्रथम प्रकार के देवी-देवताओं को 'देवांगी 'या 'राजांगी' तथा द्वितीय प्रकार के देवी-देवताओं को भूतांगी कहा जाता है।

राजांगी या देवांगी वर्ग

इनमें प्रथम वर्ग में उन देवशक्तियों का परिगणन किया जाता है, जिनके मानवीय रूप का अवतरण तो क्षेत्र विशेष में जनसामान्य के रूप में ही होता है, किन्तु अपने उदात्तगुणों, उच्च आदर्शों, मानव कल्याणकारी कृत्यों एवं लोक कल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण जनता के मानस पर श्रद्धा और आदर की ऐसी अमिट छाप छोड़ जाते हैं कि लोग उन्हें मरणोपरान्त भी दैवी शक्ति के रूप में स्मरण करते हैं तथा अपने सभी मंगलकार्यों के अवसरों पर उन्हें पूजते भी हैं? कई-कई स्थानों पर उनके देवस्थलों का निर्माण करा कर वहाँ पर नियत भेंट पूजा के साथ उन्हें अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

राजांगी वर्ग में सामान्यतः उनका परिगणन किया जाता है जो कि मूलतः राजपरिवारों से संबंध रखते हैं तथा अपने सद्-गुणों तथा लोकोपकारक कृत्यों के फलस्वरूप प्रजाजनों के द्वारा स्थानवासी बना कर देवरूप में पूजे जाते हैं।

भूतांगी वर्ग

भूतांगी वर्ग के अन्तर्गत उन मृतात्माओं का परिगणन होता है, जो दुर्घटना आदि में अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं या किसी विशेष कारणवश आत्मघात करके मर जाते हैं या किसी षड्यंत्र के शिकार हो जाते हैं या जो अगतिक रह जाते हैं। उनकी प्रेतात्माएँ पूजा-आराधना के लिए सम्बद्ध व्यक्तियों को पीड़ित करने लगती हैं। परेशानियाँ आने पर उनके कारणों का पुछेरों/ गणतुओं से पता चलने पर उनकी अपेक्षित पूजा करके उन्हें संतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तथा उन्हें स्थानवासी बना कर उनकी पूजा-आराधना करके उन्हें संतुष्ट किया जाता है। कुमाऊँ के इस कोटि के देवताओं में गंगनाथ, भ्वलनाथ, कलविष्ट, भनरिया, ऐडी आदि के अतिरिक्त भूतप्रेत, मसाण, चुड़ैल आदि का भी परिगणन इसी में किया जाता है।

उत्तराखण्ड के दोनों मंडलों के लोकदेवता

कुमाऊँ मंडल

पूर्वी एवं पूर्वोत्तरी क्षेत्र- कालीकुमाऊँ एवं सोर-पिथौरागढ़ के विभिन्न क्षेत्रों तथा स्थानीय स्तर पर पूजित देवी-देवताओं के नाम (क्षेत्रीय)- गोरिल, चौमू/ चमलदेव, ऐड़ी, सिद्ध, त्यूना-ब्यूना, क्षेत्रपाल, भूमिया, रिखेसर, ढेरनाथ, स्यूरा-प्यूरा, सैंम, हरु, नारसिंह,

मनार, मल्लिकार्जुन, खण्डेनाथ, सिद्धनाथ, बलैनाथ आदि।

स्थानीय- घटकू, हिंगला, रैणसैंणी, रणकोची, जैरतुवा, चौपटिया, कठाड़ी, भराड़ी, गजार, कैलपाल, नौलू, लाटा, सानी, बखरिया आदि।

जनजातीय क्षेत्रों के लोकदेवता- हिंवाल, हरद्यौल, सांई, ल्वारद्यौ, थत्याल, घुरमा, साद्यौ, ल्हमसाल, ढमढमिया, अन्यारी देवी, भराड़ी देवी.

गढ़वाल मंडल के पश्चिमोत्तरीय क्षेत्रों, टिहरी एवं उत्तरकाशी क्षत्रों में पूजे जाने वाले लोकदेवता- भदाण, धार्या, नौद्वौ, वीरेश्वर चम्पवा, बाबा रमोला, माणिकनाथ, जाख, पोखू, कचडू, सिरगुल, गड़वाड़, मोशला, मेरु, कर्ण, दुर्योधन, कंडारदेव, मदननेगी, गौरियाँ/गोरखनाथ, निरंकार, सत्यनाथ, सिद्धनाथ, मदराज, नागर्जा, घण्डियाल आदि।

देवप्रकोप एवं आराधनात्मक विधि-विधान

उत्तराखण्ड में पूजित इन लोकदेवताओं की प्रकृति एवं आचरण सामान्यतः मानवीय प्रकृति एवं आचरण के समकक्ष ही होता है। फलतः समय-समय पर उनकी अपेक्षित भेंट-पूजा न किये जाने अथवा उपेक्षित किये जाने पर वे मानवों के समान रुष्ट हो जाते हैं और सम्बद्ध लोगों को अनेक रूपों में पीड़ित करने लगते हैं। कभी-कभी तो ये अपने पारिवारिक जनों तथा सगे सम्बन्धी जनों तक ही परिसीमित न रहकर भेंट-पूजा प्राप्त करने की अभिलाषा से उनकी विवाहिता बेटियों तक पर पकड़ कर डालते हैं और उनसे भी अपनी भेंट-पूजा लेकर ही छोड़ते हैं। (यह परिस्थिति प्रायः तब होती है, जब विवाह के बाद बेटियाँ अपने लोक देवता को भूल जाती हैं)

यहाँ की पर्वतीय भाषाओं में देव-प्रकोप को 'देवता -लगना' या 'दोष' कहा जाता है। इसकी अभिव्यक्ति आधि, व्याधि अथवा जन-धन की हानि आदि किसी भी रूप में हो सकती है। मानवों दौरे में सामान्यतः व्याधि का व्यक्त रूप है- बेहोशी, पागलपन, दौरे पड़ना, शरीर का अकड़ जाना, मृतशिशु का जन्म, असंगत भाषण, आदि इसी प्रकार यह प्रकोप पशुओं के माध्यम से भी प्रकट हो जाता है, यथा थनों से दूध के स्थान पर रक्त निकलना, दूध बंद हो जाना, घास-पानी का परित्याग कर देना अथवा किसी ऐसे रोग से ग्रस्त हो जाना, जिसका निदान वैद्यों द्वारा नहीं हो ये लक्षण पा रहा हो और जानवर का अधिक घातक बन जाना। मानव और पशु दोनों में समान रूप से दृष्टिगत होते हैं। इस प्रकार के देवता के प्रकोप से मुक्ति पाने के लिए लोक समाज द्वारा अपनाये जाने वाला विधि-विधान से विहित अनुष्ठान कर दोष मुक्त हुवा जाता है।

जन सामान्य में इसके निमित्त सामान्यतः जिस प्रक्रिया को अपनाया जाता है, उसका रूप कुछ इस प्रकार है। देव प्रकोप की आशंका होने पर सर्वप्रथम उचैंण/उच्यैंण (संकल्प प्रक्रिया) उठाया जाता है, जिसमें हरे पत्ते पर कुछ चावल, रुपया रख कर उसकी पुड़िया बाँध कर पीड़ित व्यक्ति या पशु के सिर के ऊपर इस वचन-बद्धता के साथ सर से तीन बार घुमाया जाता है कि इस विषय में पुछेर (गणतुला/बाक्की) से पूछताछ करने पर जिस किसी भी देवता का प्रकोप निकलेगा उसे यथाविधि पूजा के द्वारा संतुष्ट किया जायेगा। अन्यथा किसी डंगरिये को बुलाकर उस के द्वारा प्रभावित व्यक्ति को विभूति लगाकर, एक नियत समय में 'करार' को पूरा करने को कहा जाता है। यदि उस निर्धारित समय में, सब सामान हो जाता है, तो लोकदेवता की पूजा सम्पन्न कराई जाती है।

लोक देवताओं का आवाहन (लोक-आख्यानों द्वारा लोक देवता को बुलाना)

उत्तराखण्ड में लोक देवताओं को बुलाने के लिए जागर, बैसी तथा जात (यात्रा) प्रमुख है। जागर' का

अर्थ है, दैवीशक्ति को जगाना। आख्यानों के गायन के माध्यमों से डंगरिया/ पश्वा में उनका अवतरण कराना अर्थात् कष्टों के निवारणार्थ उनका आह्वान करना। उत्तराखण्ड में लोक-देवताओं को प्रसन्न करने, किसी परेशानी से निवृत्ति पाने अथवा किसी मनोकामना की पूर्ति, वार्षिक पूजन, पारिवारिक खुशी अथवा अनिष्ट निवारण के निमित्त देवता को आमन्त्रित करके उससे प्रश्न कर मार्ग-दर्शन की अपेक्षा की जाती है। प्राय: यह प्रक्रिया सन्ध्या काल के बाद ही कराई जाती है

बैसी व छमासी का कार्यक्रम कठिन होता है। उन्हें बाईस दिन या छः माह तक गोरखनाथ की धूनी में रहते हुए धूनी को अनवरत रूप में प्रज्वलित रखते हुए, संयम पूवर्क दिन व्यतीत करने होते हैं। प्रातः एवं सायंकाल 'देव-अह्वान' की प्रक्रिया सम्पन्न की जाती है।

उत्तराखण्ड में जात (यात्रा) का भी विशेष महत्व है यथा नंदादेवी जात (यात्रा) सुरकुण्डा देवी जात (यात्रा) बद्रीनाथ जात (यात्रा) कुंजापुरी जात (यात्रा) आदि। ऐसी यात्रा एक निर्धारित समय में शुभ मुहूर्त में निकलती है। अधिकांशतः ये यात्राएँ लोक-देवियों से सम्बन्धित ही होती है। इनका मुख्य उद्देश्य एक यात्रा के माध्यम से जन समुदान को जोड़ना है। ऐसी यात्राऐं विभिन्न स्थानों में अपना पड़ाव डालकर आगे बढ़ती है। यात्राओं में डोलियाँ चलती हैं। ये डोलियाँ दैविक शक्ति से परिपूर्ण होती है। स्थानीय लोग डोली के समीप पहुँचकर आशीर्वाद लेते हैं।

लोक देवताओं की अनोखी भेंट-पूजा

उत्तराखण्ड के लोकदेवकुल में अनेक देवी-देवता ऐसे हैं, जो प्रसाद के रूप में ऐसी वस्तुओं को स्वीकार करते हैं, जो सामान्यतः किसी अन्य देवी-देवता को नहीं चढ़ाई जाती है। उदाहरण के तौर पर कुमाऊँ-गढ़वाल में उभयत्र अनेक देवी-देवता ऐसे हैं, जिन्हें पाषाणों (पत्थरों) की भेंट चढ़ाई जाती है। यथा (कुमाऊँ) कठपुड़िया/बूड़ीदेवी (चम्पावत), विनायक (दारमा-चौदांस), भारामल (तराई), सलया (टिहरी), घूरादेवी (चमोली)

चमोली जनपद में स्थित त्रिजगीनारायण तथा चम्पावत में स्थित गोरखधूनी ऐसे देवस्थल हैं जहाँ पर काष्ठ (लकड़ी) की भेंट चढ़ाई जाती है तथा राख का प्रसाद पाया जाता है। इन लोकदेवताओं में कतिपय देवी-देवता ऐसे भी हैं जिनको बीड़ी, सिगरेट आदि भेंट की जाती है। यथा- असुरदेवता (पिथौरागढ़) कलविष्ट (अल्मोड़ा), कंडोलिया (पौड़ी गढ़वाल)। गढ़वाल मंडल के पौड़ी जनपद की लंगूर पट्टी का लंगूरी भैरव' कालानाथ भैरव को केवल मडुवे (रागी) की रोटी का प्रसाद चढ़ाया जाता है। यहाँ के देवी-देवताओं को रोट (आटा और गुड मिलाकर बनने वाला पकवान) भेंट किया जाता है, जिसे लोक देवी-देवता का विशेष प्रसाद माना गया है।

लोक देवी-देवताओं के प्रसिद्ध स्थान

उत्तराखण्ड के लोक देवी-देवताओं में कुछ मंदिर (स्थान) न केवल प्रसिद्ध हैं वरन् यहाँ पहुँच कर लोगों की मनोकामनाएं भी पूरी होती है। इनका संक्षिप्त वर्णन इस लेख में प्रस्तुत है।

गोलू देवता (चितई मंदिर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

(1) गोलू देवता (स्थानीय भाषा में ग्वाल देवता) को न्याय का देवता कहा जाता है। गोलू देवता अपने न्याय के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। यद्यपि उत्तराखण्ड में यत्र-तत्र गोलू देवता के कई मंदिर है, किन्तु सर्वाधिक मूल स्थान अल्मोड़ा जिले में स्थित चितई गोलू देवता का मंदिर है। इस मंदिर में लगी असंख्य घंटियों और अर्जियों इस बात का प्रमाण देती है कि कुछ की मनोकामना पूर्ण हो गई है, कुछ ने अपनी अर्जी लगा रखी है।

गोलू देवता को स्थानीय संस्कृति में सबसे बड़े

गोलू देवता मन्दिर, अल्मोड़ा

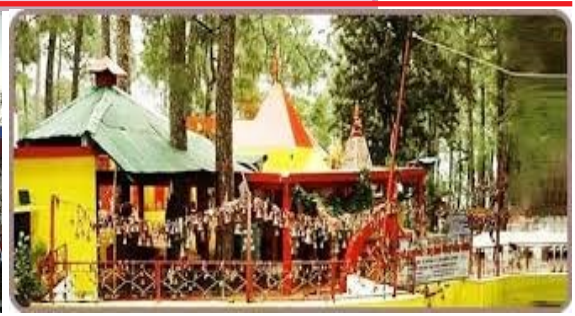

कलविष्ट मन्दिर, अल्मोड़ा

और त्वरित न्याये के देवता के रूप में पूजा जाता है। इन्हें राजवंशी देवता के तौर पर पुकारा जाता है। इनका एक नाम गौर-भैरव भी है। गोलू देवता को भगवान शिव का ही अवतारी माना जाता है। मनोकामना पूर्ण होने पर लोग मंदिर में घंटी चढ़ाते हैं, यहाँ माँगी गई किसी भी भक्त की मनोकामना कभी अधूरी नहीं रहती। हर व्यक्ति को अपनी मनोकामना हेतु आवेदन पत्र लिख कर मंदिर परिसर में लगाना होता है। इन्हें स्थानीय लोग ईष्ट देव के रूप में भी पूजते हैं। अल्मोड़ा से यह स्थान आठ किलोमीटर दूर है।

(2) **भोलानाथ-** भोलानाथ (भोलनाथ) भी गोलू देवता की भाँति प्रसिद्ध है। गोलू देवता के साथ-साथ ये भी ईस्ट देव के रूप में पूजे जाते है। भोलानाथ राजा उदयचंद के बड़े बेटे थे, निर्वासित थे। छोटे पुत्र ज्ञानचंद का राज्याभिषेक कर दिया गया। कुछ समय बाद भोलानाथ साधू वेश में अल्मोड़ा में ठहरे ज्ञानचंद को जानकारी मिली। उसने राज गद्दी जाने के भय से भोलानाथ की हत्या करवा दी। वे प्रेतआत्मा (भूत) बनकर सताने लगे। उनकी पूजा हुई। तब शांति मिली

3) **हरू देवता-** ये परोपकारी देवता हैं। सुख, सम्पदा, धन-धान्य-सूचक हैं। हरू काली नाग देवी के ज्येष्ठ पुत्र थे। चम्पावत के राजा बने। एक दिन राज त्याग कर साधू बन गये। दिपलाकोट की रानी को वरण करने गया, वहीं कैद हो गया। छोटे भाई सैम और भांजा

सैममन्दिर, अल्मोड़ा

ग्वेल ने मुक्त कराया। भाटकोट आदि में इनके मंदिर हैं।

(4) **सैम देवता-** कालीनारा के हरु का छोटा, भाई। हरू की भांति सुख-समृद्धि के देव हैं। सैम देवता का मंदिर जागेश्वर मंदिर अल्मोड़ा के निकट ही है। लोक देवता में प्रसिद्ध देवा इनका स्थान झाकर सैम के नाम से जाना जाता है।

(5) **कलविष्ट-** कलविष्ट, केशव कोट्यूडी का पुत्र था। पाटिया गांव में रहता था। राजपूत था। बिनसर में गायें चराता था। छलपूर्वक मारा गया। मृतक की आत्मा गाँव भर को कष्ट देने लगी। आत्मा की शांति

कण्डार देवता मन्दिर, गढ़वाल

बालासुन्दरी देवी, काशीपुर

ऐंड़ी देवी मन्दिर, अल्मोड़ा

कण्डार देवता की मूर्ति

के लिए स्थान दिया गया। मंदिर बनाया गया। फिर लोगों की मदद करने लगा। बिनसर, पाली पछाऊँ में अधिक पूजा जाता है। कलविष्ट को भी न्यायकारी देवता मानते हैं।

(6) चौमू, बघाण, नौलदानू- ये पशुओं के देवता हैं। चौभू, रियुणी, द्वारसों के ग्रामीण अंचल में पूजा जाता है, बधाण गाय, भैंसों के जनने के 5 वें, 7 वें था 11वें दिन पूजा जाता है। उसके बाद दूध देवताओं में चढ़ाने योग्य होता है। नौलदान का किसी पेड़ की जड़ में वास माना गया है। पशुओं में कोई बीमारी आने पर लोग इन लोक देवता की शरण में जाते हैं।

(7) सिटुवा-विटुवा- ये वीर और तांत्रिक थे। गड़देवी के धरम भाई माने जाते हैं। ये लोक वीर देवी आपदाओं से रक्षा करते इनकी गाथाएँ लोक कला में सुप्रसिद्ध हैं। नाट्य मंचन के द्वारा भी प्रदर्शन होता है।

(8) नन्दादेवी- नंदादेवी समूचे कुमाऊँ एवं गढ़वाल मंडल और हिमालय के विभिन्न भागों में जन सामान्य की लोकप्रिय देवी है। नंदा की उपासना प्राचीन काल से ही किये जाने के प्रमाण धार्मिक ग्रंथों में मिलते हैं। नंदा को नवदुर्गाओं में से एक बताया गया है। भविष्य पुराण में जिन दुर्गाओं का उल्लेख है, उनमें महालक्ष्मी, नंदा, क्षेमकरी, शिवदूती, महाटूँडा, भामरी, चंद्रमंडला, रेवती और हरसिद्धी हैं। शक्ति के रूप में नंदा ही सारे हिमालय में पूजित हैं। नंदाष्टमी को कोट की माई का मेला, नैनीताल में नंदादेवी का मेला तथा अल्मोड़ा में नंदादेवी का भेला प्रतिवर्ष भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी को लगता है। देवी के प्रतिमा कदली के वृक्ष से तैयारी की जाती है। नंदादेवी चंदवंश के राजाओं की कुलदेवी रही है।

(9) ऐड़ी देवता- उत्तराखण्ड के दोनों मंडलों का एक बहुपूजित लोक देवता है। सैम व गोरिया के समान ही इनकी पूजा भी लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र में होती है। प्रमुख रूप से इन्हें पशुचारक वर्ग का देवता माना जाता है। लोक गाथाओं में यह एक अल्हड़ प्रकृति का आखेटा प्रेय देवता है? इनका प्रमुख मंदिर जनपद अल्मोड़ा के लमगड़ा विकास खण्ड में है।

(10) कंडारदेव- कण्डार देवता का प्रभाव क्षेत्र गढ़वाल मंडल के उत्तरकाशी जनपद का उत्तरी क्षेत्र है। इनका निवास स्थान उत्तर-काशी के बगियाल गाँव के ऊपर स्थित ततराली गाँव में माना जाता है। यह यहाँ के भट्ट जाति के ब्राह्मणों का इष्टदेव है। यहाँ के लोगों की इनके प्रति बड़ी

कसार देवी, अल्मोड़ा

ज्वाल्पा देवी मंदिर (पौड़ी गढ़वाल)

धारीदेवी मंदिर श्रीनगर (गढ़वाल)

आस्था है।

(11) कठपुड़िया देवी- यह कुमाऊँ मंडल के पूर्वी शौका जनजाति द्वारा एक पथरक्षिका के रूप में आधारित देवी है। इनका न कोई मंदिर होता है, न मूर्ति और न पूजा का कोई नियत समय या विधि-विधान ही 'कठपुड़िया' का अर्थ है- काष्ठ-पाषाण के पत्र पुष्प की भेंट ग्रहण करने वाली देवी।

(12) कसार देवी- अल्मोड़ा नगर से 7 कि.मी. पर उत्तर दिशा में एक ऊँची चोटी पर कसार देवी का एक प्राचीन ऐतिहासिक शक्तिपीठ है। माना जाता है कि स्कन्द पुराण (मानस खण्ड) में उल्लिखित काषाय-पर्वत' सम्भवतः यही स्थान है। इस स्थान पर स्वामी विवेकानंद को आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त हुई थी। कसारदेवी स्थानीय लोगों की कुल देवी भी है।

(13) ज्वाल्पादेवी- यह गढ़वाल मंडल के पौड़ी जनपद की एक बहुमान्य देवी है। यहाँ पर दूर-दराज से देवी के भक्तजन उनकी आराधना करने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते हैं। इनका स्थान जनपद पौड़ी से 33 कि.मी. की दूरी पर कफोलस्यूं पट्टी पर स्थित है। देवी के चमत्कारों के विषय में प्रचलित है कि पूजा के दिनों में यहाँ एक कड़ाही में 5 सेर तेल को खोलाकर उसमें उड़द के जो पकौड़े पकायें जाते हैं, उन्हें

धारीदेवी की मूर्ति, श्रीनगर (गढ़वाल)

पश्वा नंगे हाथ से निकालकर उपस्थित श्रद्धालुवों को प्रसाद के रूप में देता है।

(14) धारीदेवी- अलकनंदा की जलधारा से पायी जाने के कारण धारीदेवी के नाम से विख्यात महाकाली का यह सिद्धपीठ पौड़ी गढ़वाल में श्रीनगर (गढ़वाल) से 14 कि.मी.. की दूरी पर कालियासोड़ के नीचे अलकनंदा के तट पर एक अनावृत देवस्थल के रूप में स्थित है। इस स्थान पर स्थापित मूर्ति के संबंध में यह लोक मान्यता है कि मूर्ति का रूप प्रातःकाल सौम्य, मध्याह्न में विकराल एवं संध्याकाल में शांत दिखाई देता है।

नंदादेवी, अल्मोड़ा

चंद्रवदनी मंदिर, देवप्रयाग

(15) बालसुन्दरी देवी- यह देवालय कुमाऊँ मण्डल के नैनीताल जनपद (सम्प्रति ऊधमसिंह नगर) के काशीपुर कस्बे में उनके चैती मेले के क्षेत्र में स्थित है। कहा जाता है कि देवी शक्ति से प्रभावित होकर औरंगजेब ने स्वयं इस मंदिर का निर्माण कराया था। कहा जाता है कि मंदिर का निर्माण मुस्लिम शिल्पियों द्वारा किया गया। मंदिर की मस्जिदनुमा संरचना से यह स्पष्ट होता है।

(16) चन्द्रवदनी- गढ़वाल मंडल के पंवार शासकों की कुलदेवी एवं इष्टदेवी भुवनेश्वरी के रूप में मान्य चन्द्रवदनी शक्तिपीठ गढ़वाल मंडल के टिहरी जनपद में देवप्रयाग से 22 कि.मी. की दूरी पर हिंडोला विकास खण्ड के अन्तर्गत ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। स्कंद-पुराण के केदारखण्ड में इसे चन्द्रकूट पर्वत से प्रतिष्ठित माना गया है। इसे न्याय की देवी माना जाता है और अन्याय और अत्याचार के प्रति गुहार भी लगाई जाती है। इसे तंत्र साधकों के लिए एक आदर्श स्थल माना जाता है ।

उपर्युक्त लोकदेवों के अतिरिक्त समस्त उत्तराखण्ड में लोक-देवी-देवताओं के असंख्य मंदिर/स्थान स्थापित किये गये हैं। इस लेख में सभी स्थानों का वर्णन सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि लोक-परम्परा में जो देवी-देवता यत्र-तत्र स्थापित हैं उनकी मान्यता सदैव बनी रहेगी और वे आज और आने वाले कल में भी पूजा से रहेंगे।

नाग देवताओं के विविध देवालय,

उत्तराखण्ड (कुमाऊँ/ गढ़वाल मंडल) में लोक देवशक्तियों के अतिरिक्त नागयोनिक (नागकोटिक देवताओं) की भी पूजा लोक देवताओं की भाँति की जाती है। भगवान कृष्ण के रूप में पूजित गढ़वाल मण्डल के नागर्जा (नागराजा)- सेममुखीम के 'कोई ऐसा जनपद नहीं, जहाँ पर नाग देवताओं को समर्पित देवालय न हो व प्रतीक रूप में उनकी पूजा न की जाती हो। वीरणेश्वर को समर्पित देवालयों, मवालस्यूँ, चौथान पट्टी (दूधातोली) के अतिरिक्त गढ़वाल मंडल में और अनेक बहुपूजित नाग देवताओं के देवस्थल विद्यमान हैं। यथा शेषनाग (पांडुकेश्वर), भीखल नाग (रथगाँव), मंगलनाग (तलवर), वनपुरनाग (कुमोट), लोहियानाग (नीतीघाटी), पुष्करनाग (नागनाथ), नागदेव (पौड़ी गढ़वाल), तक्षकनाग (दशोली), वासुकीनाग (नागपुर), वसीनाग, बढ़वानाग, उल्हणनाग, बिम्हणनाग (जौनसार) आदि।

शेषनाग मंदिर (पाण्डुकेश्वर)

सेममुखेम नागराजा मंदिर (गढवाल)

सेममुखेम नागराजा मंदिर

गढ़वाल मंडल के समान ही कुमाऊँ मंडल में भी नागकुल के देवताओं को समर्पित अनेक देवस्थल हैं। विरणेश्वर को समर्पित आधे दर्जन देवालयों के अतिरिक्त बागेश्वर जनपद में ही बागेश्वर थल मार्ग पर नागों को समर्पित अनेक देवालय हैं, जिनमें से उल्लेखनीय हैं - धौलीनाग, फिशनाग, सुन्दरनाग, कीलीनाग (पुंगराऊ), वासुकीनाग (अठीगाँव), शेषनाग, शिशुनाग, बिसुनाग, पुष्करनाग, तक्षकनाग, कार्केटकनाग (छखाता, नैनीताल) नागदेवता (ग्वालदम, अल्मोड़ा), नागनाथ (चम्पावत) वासुकीनाग (दानपुर), नागदेव पदमगीर (सालम), सितेश्वरनाग (भंगोटी), शेषनाम (बसाड़ी - महर पट्टी), हुंकारनाग, फुंकारनाग, अनन्तनाग (विश्णेश्वर), बिलानाग, आदि।

उत्तराखण्ड के दोनों मण्डलों (कुमाउँ गढ़वाल) में स्थित नाग देवताओं के उपरोक्त 'देवालयों से ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त हिमालय क्षेत्र को संरक्षण की जिम्मेदारी इन नागदेवताओं को दी गई है। आज भी ये देवालय लोक देवी-देवताओं की भाँति पूजे जा रहे हैं। स्थानीय लोगों का इन नाग देवालयों पर अटूट विश्वास एवं श्रद्धा भाव आलोपित है।

टिहरी गढ़वाल जिले में स्थित एक प्रसिद्ध नागतीर्थ है। श्रद्धालुओं गढ़वाल मण्डल में सेममुखेम नागराज (उत्तराखण्ड में यह स्थान सेम नागराजा' के नाम से प्रसिद्ध है।) मंदिर में प्रवेश करने के बाद नागराजा के दर्शन होते हैं। मंदिर के गर्भगृह में नागराजा की स्वयं भू-शिला है।

ये शिला द्वापर युग की बतायी जाती है। मंदिर के दाँयी ओर गंगु रमोला के परिवार की मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं। सेम नागराजा की पूजा करने से पहले गंगु रमोला की पूजा की जाती है।

यह माना जाता है कि इस स्थान पर भगवान श्री कृष्ण कालिया नाग का उद्धार करने आये थे। इस स्थान पर उस समय गंगु रमोला का अधिपत्य था। श्री कृष्ण ने उनसे यहाँ पर, कुछ भू-भाग माँगना चाहा परन्तु गंगु रमोला ने यह कहकर मना कर दिया कि वह किसी चलते-फिरते व्यक्ति को अपनी भूमि नहीं देते। तब श्री कृष्ण ने अपनी माया दिखाई तत्पश्चात् गंगु रमोला ने इस शर्त पर कुछ भू-भाग श्री कृष्ण को दे दिया कि वो एक हिमा नाम के राक्षस का वध करेंगे, जिससे वो परेशान थे।

सेम मुखेम नागराज मंदिर को उत्तराखण्ड का पांचवां धाम भी माना जाता है, यह मंदिर पर्वत के सबसे ऊपरी भाग पर स्थित है। यह भी माना जाता है कि द्वारिका डुबने के बाद श्री कृष्ण यहाँ नागराज के रूप में प्रकट हुए थे। इस स्थान की हरियाली, पवित्रता और सुन्दरता को देखकर भगवान कृष्ण ने नागराजा के रूप में यहाँ रहने का निर्णय कर लिया।

उत्तराखण्ड में नाग देवताओं का इतना प्रभाव है कि यहाँ के कई स्थानों के नाम इन्हीं नाग-देवताओं पर

रखे गये हैं- यथा- वेणीनाग, धौली नाग, वसीनाग, नागराजा, आदि।

आज की पीढ़ी को अपने लोक देवता, इष्ट देवता, ग्राम देवताओं की कोई जानकारी नहीं है, जबकि इन्हीं लोक-देवताओं की शरण में जाकर हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए मन्नत माँनी प्रार्थना की, उनका आशीर्वाद लिया। पहाड़ से यद्यपि हम पलायन कर, कहीं अन्यत्र बस गये हैं, लेकिन अपने लोक देवताओं के प्रति हमारा स्नेह उनका आशीर्वाद सदैव लेना चाहिए। हमें अपने माता-पिता अथवा अपने पारिवारिक सदस्य अथवा गाँव के लोगों से यह पूछना कदापि उचित नहीं लगता कि हमारे कुल देवता कौन है इष्ट देव कौन हैं? कुलदेवी कौन है? हम पलायन के साथ अपने कुल देवी-देवताओं को भूल गए, जिन्हें पहाड़ के लोग सदियों से पूजते आ रहे हैं; जिनके विश्वास पर' जीते रहे। हम अपने लोक देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा रखें तभी हमारा कल्याण होगा।

***

संदर्भित पुस्तकें/पत्रिकाएँ

1- जोशी, कृष्णानंद - कुमाऊँ का लोक साहित्य,
2- उपाध्याय, उर्वादत्त- (1979) कुमाऊँनी लोकगाथाओं का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन,
3. पांडे, बी.डी. ((1937) कुमाऊँ का इतिहास
4. शर्मा, डी. डी. (1998) हिमालयी संस्कृति के मूलाधार
5. उत्तराखण्ड - अंक 7
6. पुरवासी अंक- 1988, 1996 अल्मोड़ा
7. पहाड़ अंक - 2, 3, नैनीताल
8. जगदीश प्रसाद (1991) कुमाऊँ के देवालय, नैनीताल .

चित्र साभार : झा, राकेश कुमार, **मिथिला चित्रकला का सिद्धांत**, (2023ई.) मिथिला स्कूल ऑफ आर्ट फाउंडेशन, अंधराठाढ़ी, जिला- मधुबनी,

मिथिला में कुल देवी के भगवती घर से आँगन में बने मुख्य अरिपन तक के रास्ते पर बनने वाला अरिपन

थारू जनजाति की लोकदेवी : 'सहोदरा'

श्री रवि संगम

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर बौद्ध-सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं। मेरे विशेष आग्रह पर नरकटियागंज के निकट स्थित सहोदरा स्थान के इतिहास पर आलेख लिखा है।

बिहार के पश्चिमी चम्पारण जिला में एक स्थान है सहोदरा-स्थान। यह नरकटियागंज से भिखनाठोढी के रास्ते में पड़ता है। इसे स्थल पर यद्यपि शिलालेखीय प्रमाण से नारायण पाल के समधी एवं रामपाल के श्वशुर यदुकुलतिलक तुङ्गदेव के द्वारा विष्णुमन्दिर बनाने का उल्लेख मिलता है, किन्तु इसी स्थल से इस काल से कम से कम दो शताब्दी पूर्व के भी कुछ अक्षर मिले हैं, जिससे यह स्थान अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। इस मन्दिर की विशेषता है कि यहाँ केवल महिलाएँ पुजारिन हो सकती हैं। ये साध्वी महिलाएँ पारम्परिक रूप से देवी सहादरा की पूजा करती हैं। लेखक ने इस साध्वी से भेटवार्ता के दौरान जानकारी हासिल की कि यह वस्तुतः थारू जनजाति की देवी हैं। यहाँ बुद्ध के काल में थारुओं का निवास स्थान था। उसी परम्परा के अनुसार कपिलवस्तु से संन्यास लेकर चले बुद्ध ने यहाँ एक साध्वी का दर्शन किया था। वही बाद में चलकर थारुओं की देवी बनकर यहाँ पूजित हुईं।

सतरंगी विविधताओं में, हजारों जन-जातिओं के बीच, सदियों से पृथक-पृथक रूप में ग्राम देवी-देवता, लोकदेवी-देवता के प्रति आस्था-प्रेम हमारे देश में आज भी विद्यमान है। इनमें एक विशिष्ट, अतिप्राचीन समुदाय है- थारू जनजाति, जो अपनी संस्कृति व परंपराओं को आज भी संरक्षित रखे हुए है। देश में यह समुदाय कई राज्यों में निवास करती है।

बिहार में भी थारू समुदाय सूदूर उत्तर, नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र, 'चंपारण कॉरिडोर' में आज भी 2 लाख से अधिक लोग निवास करते हैं। यह जनजाति इस भूभाग में 3000 वर्षो से निवास करता आ रहा है, जिसका विवरण मुख्य रूप से बौद्ध-ग्रंथों और के. पी. जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना के रिसर्च जर्नल में है।

थारू समुदाय द्वारा स्थापित, एक अतिविशिष्ट, उपेक्षित पर्यटक स्थल है— प. चंपारण में। आज से 2500 वर्ष पूर्व, यह स्थल 'अनुपिया नगर' के नाम से जाना जाता था। यहाँ एक महिला सन्यासिनी 'शाक्य ब्राह्मणी' निवास करती थी- जिन्हे थारू समुदाय के लोग अपनी लोकदेवी, आराध्यदेवी मानते थे। उनके शरीर त्याग करने के पश्चात, थारू जनजाति, उनके आश्रम-स्थल पर, एक छोटा मंदिर बनाकर, वहाँ उनकी मूर्ति की स्थापना कर, उनकी पूजा करते थे, जो लंबे कालखंड तक चलता रहा। वे उन्हे अपनी प्रमुख देवी मानते थे।

बौद्धकाल का अन्त होने के बाद, बहुत से थारू समुदाय के लोग हिन्दू हो गये- जिसके कारण 'शाक्य ब्राह्मणी सहोदरा' के स्थान पर यह 'सुभद्रा स्थान' हो गया। जो आज हिन्दू धार्मिक स्थल के रूप में पूजित है।

लेकिन वास्तविकता यही है कि यह थारू समुदाय द्वारा स्थापित बौद्ध सन्यासिनी की ही मूर्ति है। इसका विवरण बौद्धग्रंथों में मिलता है- जब गौतम बुद्ध ज्ञान की खोज में, केश-वस्त्र त्याग कर, मल्लो के राज्य के अन्तर्गत अनुपियानगर (वर्तमान में प। चंपारण के नरकटियागंज सबडिविजन के नरकटियागंज-भिखनाठोरी सड़क मार्ग के निकट) पहुँचे थे। यह मल्लो के कोशल राज्य के अधीन था। यही पर उस कालखंड में दूर-दूर तक प्रसिद्ध शाक्य ब्राह्मणी सहोदरा का आश्रम था, जिनके मिलने गौतम बुद्ध गये थे। यहाँ उन्हे भात (उबला चावल) खिलाकर ब्राह्मणी ने उनका आतिथ्य सत्कार किया था। यहाँ कुछ समय प्रवास करने के बाद गौतम बुद्ध ने, यहाँ से थोड़ी दूर पर स्थित पद्मा ब्राह्मणी के आश्रम को प्रस्थान किया था।

थारूओं की लोकदेवी शाक्य ब्राह्मणी सहोदरा का आश्रम, उस काल में यहाँ तीन टीलों पर स्थापित था। जिसमें से एक टीले पर थारूओं ने उनका मंदिर स्थापित किया था। फिर 950 ई. में नारायणपाल के समधी तुंगदेव ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। इस स्थल पर आज भी बडी संख्या में कई प्राचीन, दुर्लभ पुरावशेष उपेक्षित जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं।

आधुनिक काल में 1991 ई. में के. पी. जायसवाल इंस्टीट्यूट, पटना के निदेशक व बौद्ध विद्वान डा। जगदीश्वर पांडेय ने इस स्थल का निरीक्षण कर इस बात की पुष्टि इंस्टीट्यूट के रिसर्च जर्नल में की थी। (The Journal of Bihar Research Society, vol. LXXVI-LXXVII, 1990-92)। थारू जनजाति को अनेक विद्वानों ने शाक्य की एक शाखा माना है- जिसके अनुनायी आज भी बडी संख्या में बिहार, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड में निवास करते हैं। ये मूलतः थेरवाद बौद्ध धर्म के अनुनायी हैं। ये विभिन्न बोलियाँ बोलते हैं- जो इंडो-आर्यन उपसमुह की भाषा है, जो हिंदी, उर्दू व अवधी के भिन्न है यानि थारू भाषा, नेपाली, हिंदी। इनमें से अधिकांश वनवासी है, कुछ कृषक भी हैं।

अखिल भारतीय थारू कल्याण महासंघ द्वारा प्रकाशित 'वनांचल ज्योति स्मारिका 2022' में थारू

कुटिल लिपि में लिखे कुछ अक्षर

रामपाल के श्वशुर तुंगदेव का शिलालेख

श्री लाल बाबू सिंह (मिथिला संस्कृति एवं परम्परा, 2001ई.) द्वारा, 1996ई. में प्रस्तुत शिलालेख का पाठ

1. रवीन्द्र पुनापुरपीवराः कविकीर्तयः॥ अप्यकिंचित्करे यस्य कश्चिदेवदयाग्रहः॥
2. यदिहविहितावासः (सोयं) स्वयं भगवान् हरिः॥ नभःसैन्यस्कन्ध..
3. (धव)लवङ्कसरोजभानोः। पीताम्बरस्य विवृतोभिजनक्रमोयम्। एत
4. ख्यामध्याधिकारे यदुकुलनृपतिस्तुङ्कदेवः क्रमाप्ते प्रीत्या
5. सुतस्तस्यैकः सयशः प्रसूनिकरैरामोदितानाम....
6. ...(परा)क्रमः। वाचां विभ्रममन्दिरं कृतमतिस्त्रामेति

समुदाय के विशिष्ट संस्कृति, परंपराओं का उल्लेख है। इसके अनुसार प। चंपारण के थरूहट क्षेत्र के जंगलों में थारू जनजाति हरेक 5 वर्षो पर खुद अपनी आबादी की गणना करते हैं। 264 गाँवों वाले इस क्षेत्र में यह परंपरा सौ वर्षो से अधिक काल से चली आ रही है। इनमें इनकी जनसंख्या, शिक्षा, नौकरी, आर्थिक-सामाजिक स्थिति को भी शामिल किया जाता है। इस जनगणना के अनुसार 1 लाख 92 हजार थारू आज भी इस भूभाग में निवास करते हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में विवरण –

गौतम बुद्ध ने अपना राजसी वस्त्र त्याग, प्रव्रजित होकर, वही पर मल्ल राज्य के अनुपिया नगर के आम्रवन में कुछ समय तक प्रवास किया। यह स्थान कपिलवस्तु से पूर्व में था। यह स्थान अनोमा नदी के निकट था और मल्लों के कोशल राज्य के अन्तर्गत था।

अनुपिया नगर के आम्रवन में प्रवास के बाद

परिसर में स्थित प्राचीन कूप

गौतम बुद्ध ज्ञान की खोज में यहाँ से थोड़ी दूरी पर शाक्या ब्राह्मणी के आश्रम में आये थे। शाक्या ब्राह्मणी प्रतिष्ठित आध्यात्मिक महिला थी। गौतम बुद्ध का आश्रम में शाक्य ब्राह्मणी ने भात आदि खिलाकर इनका आतिथ्य किया था। कालान्तर में शाक्या ब्राह्मणी शाक्यों की आराध्य देवी बन गई। बौद्धधर्म का प्रभाव क्षीण होने के बाद इस भूभाग में रहने वाले

मन्दिर परिसर में बिखरी पुरातात्त्विक सामग्री

शाक्य- थारू जनजाति में परिवर्तित हो गये।

थारुओं को अनेक विद्वानों ने शाक्यों की एक शाखा माना है। इस तरह उनकी आराध्या देवी शाक्य ब्राह्मणी सहोदरा बन गई। वर्तमान में यहाँ एक मंदिर स्थापित है, जिसमें देवी सहोदरा की प्राचीन मूर्ति स्थापित है, जो काले ग्रेनाइट पत्थरों की दुर्लभ मूर्ति है। वस्तुतः यह बौद्धमूर्ति है। आज यह देवी सुभद्रा के रूप में पूजित हैं। यहाँ बड़ी संख्या में हिन्दू धर्मावलंबी आते हैं।

यह क्षेत्र अतिप्राचीन काल से ही प्राक् व आद्य संस्कृतियों का केन्द्र रहा है। रामायण काल में विदेहराज राज, आदि कवि वाल्मीकि, कौरव-पांडव (महाभारत काल) और 6 ठी सदी ई. पू. में महात्मा बुद्ध, 5वीं सदी से 2 सदी ई.पू. के बीच वज्जिसंघ, चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक आदि सभी इतिहास पुरुषों का नाम 'इस पवित्र स्थल' से जुड़ा रहा है। पश्मिोत्तर बिहार में उत्तर प्रदेश और भारत-नेपाल सीमा पर बसा पश्चिम चंपारण 'विश्व सभ्यता के इतिहास' में उसी समय उभर चुका था, जब वैदिक साहित्य के जनक आर्यजनों ने अपने पूर्वी अभियान के तहत सदानीरा (गंडक नदी) को पार किया था।

लोकेशन– पश्चिमी चंपारण के नरकटियागंज सबडिविजन में नरकटियागंज-भिखनाठोरी सड़क मार्ग पर, रामपुरवा से 4 कि. मी. पूरब, गौनहा से 4 कि. मी. और भीखनाठोरी से 5 कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

***

राजस्थान में लोकदेवी की अवधारणा

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

लगभग 200 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्रीकॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान, दूरभाष संपर्क : 099280-72766, मेल : skjugnu@gmail.com

राजस्थान में वृक्ष महत्त्वपूर्ण हैं। वहाँ की वृक्षों का टोटा हो तो नागलोक से मातृशक्तियों के द्वारा वृक्ष लाने की कथा गवरी गाथा तथा गवरी नृत्य के रूप में प्रस्तुत करना उस क्षेत्र का लोक है। लेखक ने वृक्ष के सन्दर्भ में इस गवरी की गाथा को मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत कर राजस्थान का साक्षात् आभास करा दिया है। वहाँ एक एक वृक्ष लाने वाली देवी के रूप में पूजी जाती है। इस प्रकार, पूज्य देवियों की संख्या बहुत बढ़ जाती हैं। यही लोकदेवियों का मूल उत्स है।

इसके साथ ही लेखक ने राजस्थान की कुलदेवियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। वहाँ प्रत्येक कुल की इष्टदेवी होतीं हैं, जिनकी पूजा महिलाएँ करती हैं। उन्हें विशेष अवसरों पर पत्तियाँ अर्पित की जाती हैं, जिसे शीश धराई पाती कहते हैं। शक्तिपूजा में यव बोकर उनके पत्र चढाने की जो पौराणिक परम्परा है, उसके उत्स में यह शीश धराई पाती को हम देख सकते हैं। इस प्रकार, लोक देवियों तथा उनसे जुड़े लोकाचार हमें भारत की लोक परम्परा का आभास कराते हैं।

राजस्थान में देवियों के रूप आदिम, लोक और शास्त्रीय तीनों प्रकार से मिलते हैं। यहाँ गृहदेवी, ग्रामदेवी, गढ़देवी से लेकर नगरदेवी तक की मान्यता है। कुलदेवी की मान्यता शास्त्र से भी प्रमाणित हुई हैं। लोक-देवियों को गाथाओं में गाया जाता है। वे संख्या में नौ लाख हैं और आई, जरनी, मातलोक आदि नामों से आदरणीय। विधना, छठी, मासा माता, तीजमाता, चौथ माता, दसा आदि के रूप में भी लोक व्याप्ति लिए हैं। हर गाँव और खेड़ा की संस्थापिका के रूप में वह खेडाखूँट है तो हर द्वार पर ड्योढी माता। यह मान्यता आगे सिंध तक चली जाती है। यहाँ चारण शक्तियाँ भी महिमामय हैं।

गवरी : लोक नृत्यानुष्ठान

उदयपुर अंचल में भादौ और आधे आसोज माह तक जिस गवरी नृत्यानुष्ठान का आनंद उठाया जा सकता है, उसे लोकदेवियों की लीला पीठिका के रूप में भी देखना चाहिए। कुछ बातें कहने की इच्छा है कि यह पूरा नृत्यानुष्ठान कई मिथक लिए हैं। इसी से मालूम होता है कि खेती और पेड़-पौधों के फलित होने के कलैंडर की पहली जानकारी महिलाओं को ही मिली थी। यायावरी जीवन में आदमी को शिक्षित करने का श्रेय औरत को ही है। इसलिए मिस्र में भी यह मान्यता चली आई है कि औरतों ने दुनिया को खेती करना सिखाया। गवरी की मूल कथा है-

धरती पर कोई पेड़ नहीं। छाया कहाँ मिलै। नौ लाख देवियाँ परेशान। एक उडते हुए सवा माणी के

भौरे को देखा। पूछा कि जो पेड़ नहीं, तो तू कहाँ से आया। तू तो फूलों का रसिक है। देवियों को उसने बहुत परेशान होकर बताया कि पाताल में राजा वासुकी बाडी में पेड़ हैं।

देवियाँ पाताल पहुँची। एक-एक देवी ने एक-एक पेड उखाड़ा। वासुकी ने हजार फन तानकर रास्ता रोक लिया। देवी अंबा ने गुरज उठाया, लगी फन काटने। नागिन ने सुहाग की रक्षा माँगी। देवियों ने पेड़ चाहे। वासुकी ने कहा, धरती के लोग बहुत प्रपंची है। पेड़ों पर कुल्हाड़ा चलाएँगे। देवी कहा, राजा जैसल की बाड़ी में रोपेंगे। राजा जैसल ही रक्षा करेगा। सर चला जाए तो भी पेड़ नहीं कटने देगा।

एक-एक देवी पेड लेकर जमीं पर आई। देवियों का नाम भी इसी कारण हुआ- पीपल लाने वाली पीपलाज माता, नीम लाने वाली नीमज माता, आम वाली अंबा याह आमज माता, खेर वाली खेमज माता, उमर वाली उमरा माता, बरगद वाली बडली माता। शाकंभरी, हिंगलाज, कूष्माण्डा .. सोचकर देखिये।

खमनोर गाँव के पास, उनवास में पहली बार देवियों ने बाड़ी लगाई। सारे पेडों के साथ ही बरगद रोपा। राजा ने घी-दूध से सींचा मगर आबू के भानिया जोगी की सवा लाख की फौज चढ आई। देवी अंबा परीक्षा लेने पहुँची। रानी मेंदला के समझाने पर भी राजा ने सर दे दिया, इस अहद के साथ कि सवा लाख मानवी मरेंगे तो कहीं कुल्हाडा चलेगा पेड पर...।

भानिया ने कुल्हाडा चलाया। पहले वार में दूध की धारा बही, दूसरे में पानी की धारा फूटी और तीसरे में... प्रलय ही आ गया, लहू की धारा ने सारी धरती को लाल कर दिया। देवी ने कहा- पेड बचे तो पृथ्वी बचेगी, पेड कटा तो प्राण घटेगा।.....

कितना सार्थक है गवरी का देखना। बडलिया हिंदवा। गवरी का मूल खेल, अद्भुत मेल, पेड ही प्राण हैं, पेड़ से ही जहान है...। (डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू- मंदिर श्री अंबामाताजी उदयपुर, पुस्तक 2002 में प्रकाशित मूल पाठ, मेरा चौमासा पत्रिका, भोपाल में प्रकाशित आलेख- वनवासियों का पेड पुराण' बडलिया हिंदवा)

लोक नृत्य-नाट्य जिसका विसर्जन उत्सवमय है

मेवाड़ अंचल में होने वार्षिक लोकनृत्य-नाट्य 'गवरी' का श्राद्धपक्ष में समापन होता है। यहाँ बसे भील-गमेती आदिवासियों में गवरी का आयोजन अनुष्ठान की तरह किया जाता है। राखी के बाद इसका व्रत लिया जाता है। हमें याद रखना चाहिए कि गवरी तमाम नाटकप्रेमियों और सिने-रंगप्रेमियों के बीच एक ऐसा नाट्य अनुष्ठान है जिसके आयोजन के मूल में 'नांदी वचन' जैसी वह भावना विद्यमान है जो नाट्यशास्त्र में भरत मुनि करते हैं और संस्कृत के लगभग सभी नाटकों में लोक से ग्रहण की गई है- "समय पर वर्षा हो, पृथ्वी पर सुभिक्ष हो, गायें स्वस्थ हों और पयस्विनी होकर पर्याप्त दूध प्रदान करें। बहु-बेटियाँ प्रसन्न हों, निरोगी, चिरायु और समृद्धशाली हों। राज्य भयमुक्त हों।"

नाटक के आयोजन के मूल में यही भाव नाट्यशास्त्र के रचयिता को अभिप्रेत रहा है। यह व्रत इसलिए है कि 40 दिन तक गवरी दल के सदस्य न हरी सब्जी खाते हैं न ही पांवों में जूते पहनते हैं। वे परिवार से पूरी तरह दूर रहते हैं और किसी देवालय में ही विश्राम करते हैं। न कमाने की चिंता न ही खाने का ख्याल। बाजों को जमीन पर नहीं रखा जाता। बाजा कंधे और बंद सब धंधे।

हाँ, जिस किसी भी गांव में गवरी नर्तन का व्रत लिया गया, वहाँ इन दिनों समापन के दो-दो उत्सव मनाए जा रहे हैं। घड़ावण और वलावण अर्थात् तैयारी और विसर्जन। घडावण के दिन खाट पर काली खोल चढ़ाकर हाथी बनाया जाता है और इंद्र की सवारी निकाली जाती है। विसर्जन के लिए गजवाहिनी पार्वती

'गौरजा माता' की मृण्मयी मूर्ति बनाई जाती है और उसको सजा-धजाकर गांव में सवारी निकाली जाती है। पूरे रास्ते पर गवरी के सभी मांजी पात्र- बूडियाँ, भोपा, दोनों राइयाँ, कुटकुटिया आदि खेलों को अंजाम देते चलते हैं और थाली के साथ मांदल (मर्दल, पखावज) बजते हैं : दींग-बिदिंग, दींग-बिदिंग।

इसके ख्याल वस्तुत: पर्यावरण की सुरक्षा का पाठ पढ़ाने वाले प्राचीनतम ख्याल है कि हर कीमत पर पेड़ बचने चाहिए। ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखंड में, पद्मपुराण के सृष्टिखंड, कृषि पराशर, काश्यपीय कृषि पद्धति आदि में इस प्रकार की मान्यताओं को संजोया गया है मगर उनका उत्स लोक की ऐसी ही मान्यताओं में देखा जा सकता है।

कुल देवी : एक लोकदृष्टि :

राजस्थान में प्रत्येक परिवार की कुल देवी है। कहा है :

वृक्षमूर्व्यां तथा वायौ व्योमे स्वर्गे च सर्वश:।
एवं विधा त्वियं देवी सदा पूज्या विजानता।
अप्येकं वेत्ति तो नाम धात्वर्थनिगमैर्नर:।
स दु:खैर्वर्ज्जित: सर्वै: सदा पापाद्विमुच्यते॥

(देवी पुराण 38, 100-102)

भारतीय परिवारों में कुल देवी की मान्यता लगभग वैसे ही रही है जैसे मिस्र में थी। ग्रीक परिवार भी कुल की रक्षा करने वाली शक्तियों में विश्वास करते थे। कुल देवियाँ हमारे घर-गुवाड़ के मूल द्वार की सूचक होती हैं। अधिकांश कुल देवियों के नाम ऐसे होते हैं, जो शास्त्रों में नहीं मिलते हैं।

उनके आहार, पानक, स्थान, स्थिति केवल लोक स्मृतियों के आधार पर होते हैं, क्यों? कहीं न कहीं इन देवियों के मूल जनजातीय होते हैं, कुछ प्रसंगों में शासकों के साथ विशेष रूप से देखने की जरूरत होती है, क्यों यह मान लिया गया है कि जो कुल देवी राजा की होगी, वही उनकी प्रजा की होगी।

शाक, अमिष जैसे आहार, भोग, नैवेद्य, उनके पूजन की सभी तिथियाँ भी बहुत कुछ कहती हैं, तीज तिथि का नाम ही गौरी तिथि हो गया।

देवियाँ वंश वल्लरी की मूल होती हैं, कभी माता से ही व्यक्ति को पहचाना जाता था, नामकरण माँ के आधार पर ही होता था, देवताओं के नामकरण में भी इस मान्यता को मुहर लगाई गई है और उनके बारे में सबसे ज्यादा केवल कुल की वरिष्ठ महिलाएँ ही जानती हैं।

लोकदेवताओं के शीश धराई पाती

राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि में लोकदेवताओं के अपने उपासना, अर्चा, अनुष्ठान के विधान है। उनको सुगंधित फल-फूल की अपेक्षा वृक्ष पाती (पत्र, पल्लव) चढ़ाने की परंपरा रही है।

प्रतिमा के सिर भाग पर बिना डंठल वाली पत्तियों को जमा-जमा कर चुना जाता है। यूं तो थावर

लोकदेवताओं के शीश धराई पाती

(शनिवार) को पाती चढ़ाई ही जाती है लेकिन नवरात्रि में नौ ही दिन अलग-अलग पत्तियाँ निवेदित की जाती है। कोरोना काल में ऐसा भी हुआ कि न समय पर नौरता (नवरात्र) और न कोई नियमित पूजा लेकिन पाती निवेदन करने का भाव बरकरार रहा।

खाकल, गातोड जैसे नागदेव लोकदेवता के देवरे में पिलूवा पेड़ की पत्तियाँ चढ़ाने की तैयारी होती देखी तो अनेक बातें पूछने का मन हो गया। बावजी (देव पर्याय) शब्द में बाप, वाव या वपन उगाने से आशय लिए है। ज्ञात हुआ कि कभी देवता बाड़ी और बगीचों में ही बिराजते थे और उन्हें पत्ती ही प्रिय थी। चंदन की पत्ती, नीम की पत्ती, पिलूवा की, मारुवाक आदि की। क्योंकि, पत्ती किसी भी वृक्ष के सभी गुणों को धारण करती है और वह पंचांग में शुमार है। पर्णहरित जैसी मान्यता के मूल में लोकविश्वास रहा है कि पत्ती फूल से अधिक प्रभावी है और देवता के पत्ती के धारक होने का आशय है कि वे वनस्पति के सदाबहार रूप के नियंता और अपेक्षाकर्ता हैं। फूल हर बार नहीं मिलते लेकिन पत्ती हर बार मिल जाती हैं।

शास्त्रीय और लोक दोनों देवों में यह बड़ा अंतर है। गीता में अनेक देवताओं के उल्लेख हैं और विष्णुधर्मोत्तर में रुचि के अनुसार रौच्य देवताओं का उल्लेख है। उनके प्रति पत्र को प्राथमिकता दी गई है :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

(गीता 9, 26)

निबंध ग्रंथों में विष्णुधर्मोत्तर और देवीपुराण आदि के वचनों से पत्तियों की अपेक्षा देवताओं के लिए पुष्पों का विधान

उदयसागर (उदयपुर) के एक लोकदेवता के देवरे में पाती विचार

किया गया है लेकिन वहाँ लोक मान्यताओं का अभाव है। कितने राजाओं और रानियों ने मन्दिर के पास वाटिकाएं लगवाई और पत्र-पुष्प का प्रबंध किया! आयुर्वेद में पत्ती का महत्व अधिक मिलता है, इसके मूल में वह पुरातन देवता के प्रति पत्ती निवेदन का भाव ही है जो नीरोग और निरामय जीवन की प्रेरणा देता है। इसलिए कहावत है:

देवरे की पाती मिले, बाधा सब जाती मिले...।

पाती, पल्लव को वृक्ष का हाथ भी कहा जाता है ऐसे में हिलकर गिरी पाती का मिलना आशीष का प्रतीक माना जाता है। देवरे की पाती से शगुन लिए जाते हैं। मनोरथ सिद्ध होते हैं।

लोक में जन्मी मान्यताएं सदियों की धाराओं में कैसे नवीन अर्थ लेती हैं, नवरात्र उसका उदाहरण है। रण कच्छ से मरु जांगल तक जहाँ मरुद्गणों ने कृषि की, वहाँ आश्विन में ऋतु बदलाव के साथ जव की बुवाई की स्मृति शेष है। ये जवांकुर कृषि हेतु समय के अच्छे बुरे होने के आंकलन के आधार थे। आज भी वही मान्यता है, पाती ओरना यानी बीज बोना और नोरतां यानी नवीन ऋतु का नेगचार करना।

नवरात्र की ऐसी बहुत पुरानी मान्यता है और आज भी तमाम शास्त्रीय बातों के सापेक्ष है। हजारों देवरों में ऐसी प्रथा है। इसमें न केवल भगवती अपितु लोक देवताओं की साक्षी में खेत का सूचक खेतखंड बनाकर उसमें मृदा और गोमय का संस्कारकर यव की बुवाई की जाती है। बीज को बहुत ध्यान से चुना जाता है। उसके बीच में जल भरे कलश को बीजोरा ढक कर रख

शेष पृष्ठ 66 पर

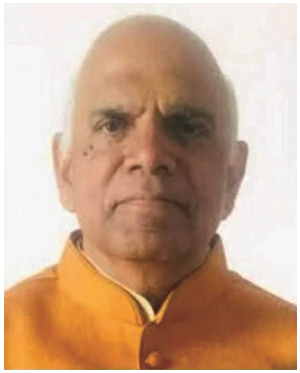

भारतीय लोक और रामचरितमानस

(लोकनायक तुलसीदास की लोकतात्त्विक दृष्टि)

डॉ. राधानंद सिंह
संरक्षक, मारुति सत्संग मंडल, पुणे

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में लोक को अत्यधिक महत्त्व दिया है। वे कतिपय स्थलों पर लोक था वेद दोनों का उल्लेख समानान्तर रूप से ज्ञान के स्रोत के रूप में करते हैं। आज यद्यपि हम वेद के सामने लोक को हीन भाव से देखें पर *"हमें यह समझना चाहिए कि लोक अंधविश्वास और रूढ़िवादिता का पर्याय नहीं है। अर्थात् लोक वह है, जो गाँव या नगर कहीं निवास करता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति का हो, और जो प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी अपनी पावन पारंपरिक संस्कृति के साथ अभाव में भी स्वभाव की रक्षा करता हो।"*

लेखक का मानना है कि तुलसीदास ने इसी उदात्त अर्थ में लोक शब्द को परिभाषित किया है। वह वेद से थोड़ा भी न्यून नहीं है। उसी लोक को रामकथा सुनाने के लिए तुलसीदास अध्यात्म की पारम्परिक भाषा संस्कृत तक का परित्याग कर देते हैं। तुलसीदास का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि उन्होंने 'वेद' का रस निचोड़कर 'लोक' में परोस दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी का श्रीरामचरितमानस लोकमंगल का महाकाव्य है और उनके श्रीराम लोकमंगल के अधिष्ठाता हैं। श्रीराम के आचार, विचार, व्यवहार और संस्कार में ही भारतीय लोकमानस की अस्मिता और आत्मा अधिष्ठित हैं। भारत के सारे लोक संस्कार, सदाचार, विचार, चिंतन, मर्यादा, धर्म और जीवन श्रीराम से ही परिभाषित होते हैं। श्रीराम समस्त लोक संस्कारों के परम पावन स्वरूप हैं।

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लोक-वेद का बड़ा सार्थक उपयोग किया है।हम जानते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास की समन्वय-साधना अप्रतिम है। समाज में जिन सिद्धांतों के बीच मतवैभिन्य के कारण कटुता बढ़ रही थी, उनमें उन्होंने समन्वय स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है। यथा- द्वैत-अद्वैत, निर्गुण-सगुण, माया-प्रकृति आदि। यहाँ भी लोक और वेद की समन्वय-साधना ही दृष्टिगत होती है।कारण स्पष्ट है कि वेद और लोक की विछिन्न धारा के कारण सामाजिक जीवन अस्तव्यस्त हो रहा था। गोस्वामी जी ने लोकमंगल के लिए दोनों का समन्वय किया। मानस में वेद आर्ष परंपरा के समस्त शास्त्रीय ज्ञान से संबद्ध है, जिसके अंतर्गत हमारे आचार, विचार, संस्कार और जीवन के शिष्ट और मर्यादित व्यवहार सन्निहित हैं। सामान्य व्यवहार में

'लोक' शब्द का प्रयोग संसार, जगत्, स्थान, प्रदेश, जन, समाज तथा लोग के लिए किया जाता है।[1]

सच यह है कि लोक और जन पर्यायवाची हैं। मानस में लोकमत का अभिप्राय जनता या समाज का मत है। इसी प्रकार लोक जिस धर्म को मानता है, वह लोकधर्म और जिस आदर्श पर चलकर वह जीता है, वह लोकादर्श है। एतदर्थ मानस में लोक मूलतः जनसामान्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसे मैंने आगे सोदाहरण स्पष्ट किया है। यह सच है कि अर्थ संकोच के कारण लोक शब्द शिष्ट संस्कृति से भिन्न अशिक्षित जनसमुदाय में प्रचलित मान्यताओं और विश्वासों को प्रतीकित करने लगा। हमें यह समझना चाहिए कि लोक अंधविश्वास और रूढ़िवादिता का पर्याय नहीं है। अर्थात् लोक वह है, जो गाँव या नगर कहीं निवास करता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति का हो, और जो प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी अपनी पावन पारंपरिक संस्कृति के साथ अभाव में भी स्वभाव की रक्षा करता हो। इसी भावभूमि पर अवस्थित होकर गोस्वामी तुलसीदास ने वेद और लोक को एक साथ प्रयुक्त कर शास्त्रीय सिद्धांतों और लोकप्रचलित मान्यताओं और परंपराओं को लोकमंगल के लिए महत्त्वपूर्ण माना है। इससे लोक-वेद की विवादास्पद कल्मषता प्रक्षालित हो गई और अतीत, वर्तमान और भविष्य (भूतास्तिभावि) की समन्वित त्रिवेणी धारा प्रवाहित होने लगी।

'मानस' में ऐसी बीस चौपाइयाँ हैं, जिनमें लोक और वेद भिन्न-भिन्न प्रसंगों में साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं। आश्चर्य यह है कि सभी चौपाइयों में लोक वेद से पहले प्रयुक्त हुआ है। इस दृष्टि से निम्नलिखित प्रसंग ध्यातव्य हैं

इस प्रसंग की पहली चौपाई है-

सो जानब सत्संग प्रभाऊ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥[2]

स्पष्ट है कि लोक में अर्थात् जनसामान्य में सत्संग का प्रभाव तो प्रसिद्ध है ही, अज्ञातार्थज्ञापक शास्त्र भी कोई दूसरा उपाय नहीं बतलाता है।[3] इसी प्रकार-

सरयू नाम सुमंगल मूला।
लोक वेद मत मंजुल कूला॥

में सरयू के दोनों किनारे सुंदर हैं। सन्त कहते हैं कि लोकमत दक्षिण कूल है और वेदमत वाम कूल है। यहाँ लोकमत का किनारा उथला है। अर्थात् जनसामान्य का जीवन अत्यंत सहज, स्वाभाविक और स्पष्ट दिखता है। वेदमत का किनारा गहरा और गंभीर है। यह वेद शास्त्र की गंभीरता का द्योतक है, जिसे आचार्य और पंडित जानते हैं। स्पष्ट है कि श्रीरामचरितमानस परमाचार्य विद्वानों, संतों के लिए भी है और गाँव के जनसामान्य के लिए भी। यह सुमंगल मूला है। अर्थात् इससे दोनों का मंगल ही होगा।

इसी प्रकार श्रीराम-जानकी विवाहोत्सव में सारे लोकाचार और वैदिक रीति से कन्यादान किया गया-

करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥[4]

इसी प्रकार भगवान् श्रीराम भरत से कहते हैं कि हम दोनों पिता की आज्ञा का पालन करें इससे ही लोक और वेद दोनों में भला है-

पितु आयसु पालहिं दुहु भाईं।
लोक बेद भल भूप भलाईं॥[5]

कुलगुरु वसिष्ठ जी से भी श्रीराम से कहते हैं-

1 रामचंद्र वर्मा (सं.) : संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, षष्ठ संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 877
2 रामचरितमानस : 1.3.6
3 त्रिपाठी, विजयानन्दजी : विजया टीका, रामचरितमानस, प्रथम भाग, चौखम्भा विद्याभवन, 2004, पृष्ठ. 21.
4 रामचरितमानस : 1.324 छंद
5 रामचरितमानस : 2.315.

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥[5क]

ऐसे ही नाम महिमा प्रसंग में कहा गया है-

नाम गरीब अनेक नेवाजे।
लोक बेद बर बिरद बिराजे ॥[5ख]

प्रभु श्रीराम की महिमा का उल्लेख करते हुए निषादराज भरत जी से कहते हैं-

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबही तें।
भयऊँ भुवन भूषन तबही तें ॥[5ग]

इस प्रकार आचार, विचार, संस्कार और सभी धार्मिक, पारिवारिक और सामाजिक व्यवहार में गोस्वामी तुलसीदास जी लोक और वेद को समान रूप से महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

इस आलेख की भूमिका के रूप में यह तथ्य ध्यातव्य है कि गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामकथा को गंगा की धारा कहते हैं, परंतु अपनी कविता को सरयू बताते हैं। यथा-

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जग पावनी गंगा ॥[6]

यहाँ श्रीरामकथा को सकल लोक और जगत् को पवित्र करने वाली गंगा कहा गया है। परंतु, अन्यत्र कहते हैं-

भयउ हृदयँ आनंद उछाहू।
भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही ॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सो।
राम बिमल जस जल भरिता सो ॥
सरजू नाम सुमंगल मूला।
लोक वेद मत मंजुल कूला ॥[7]

अर्थात् मानस-सरोवर में गोता लगाने पर कवि के हृदय में आनंद और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनंद का प्रवाह उमड़ आया। उससे वह सुंदर कवितारूपी नदी बह निकली, जिसमें श्रीराम का निर्मल यशरूपी जल भरा है।इस कवितारूपिणी नदी का नाम सरयू है, जो संपूर्ण सुंदर मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो सुंदर किनारे हैं। 'गोस्वामी जी की दृष्टि में इन दोनों मतों का अस्तित्व, औचित्य और अर्थवत्ता निरंतर राम-तत्त्व की ओर प्रवाहित होने में और अंततः उसी में विसर्जित हो जाने में है।'

गोस्वामी जी ने श्रीरामचरितमानस के इन लोकमत और वेदमत की व्यापकता को श्रीराम के श्रुतिसम्मत और लोकरंजक चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'मानस' में आद्योपांत इस चरित्र का निर्वहण किया गया है। उनका 'मानस' वेदमत (ब्रह्म चिंतन) और लोकमत (व्यावहारिक आधार) दोनों की समरस चेतना का जीवंत महाकाव्य है।

बात स्पष्ट है कि तुलसीदास जी की कविता के दोनों किनारे अनुपम हैं। एक किनारे से वेद यानी दर्शन और चिंतन की पारंपरिक धारा बहती है, तो दूसरा किनारा लोक का है। विद्वान् मानते हैं कि उनका श्रीरामचरितमानस लोकमत-प्रधान ग्रंथ है। लोकनायक तुलसीदास के श्रीराम लोकमंगल के अधिष्ठाता तो हैं ही, वे लोकरक्षक और लोकरंजक दोनों हैं। लोकमर्यादा का जैसा अप्रतिम स्वरूप यहाँ चित्रित हुआ है,वह अन्यतम है। उनके व्यक्तित्व में लोक-संस्कृति, लोकनीति, लोकरीति और लोकप्रीति का प्राधान्य है।

5क. रामचरितमानस : 2.258 दोहा
5ख. रामचरितमानस : 1.25.2
5ग. रामचरितमानस : 2.196.1
6 रामचरितमानस : 1.112.7
7 रामचरितमानस : 1.39.9-12

ऐसे लोकजीवन के महानायक श्रीराम के चरित रचते हुए उन्होंने लोकजीवन के अनुकूल अवधी भाषा को चुना। भाषा का तात्पर्य है ग्राम्य बोली। मानो उनका मन लोकभाषा अवधी में ही प्रबोधित हुआ-

भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥[8]

इस आलेख में तुलसीदास जी के मानस का लोकतात्त्विक दृष्टि से विश्लेषण करना ही मेरा उद्देश्य है। यह सच है कि लोक से संबद्ध उपर्युक्त सारे विशेषण भारतीय लोकसांस्कृतिक चेतना को किसी भी युग में जीवंत बनाए रखने के लिए अनिवार्य है।लोक से संबद्ध ये सारे विशेषण श्रीराम के व्यक्तित्व और कर्तृत्व में गहन रूप से अनुस्यूत हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि तुलसीकालीन भारतीय समाज सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से विखंडित होकर पतनशील हो गया था। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं-

"जिस युग में इनका जन्म हुआ था, उस युग के समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नहीं था।... सारा देश विशृंखल, परस्पर विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था।एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी, जो इन परस्पर विच्छिन्न और दूर विभ्रष्ट टुकड़ों में योग सूत्र स्थापित कर सके।"[9]

गोस्वामी तुलसीदास जी जैसा युगचेता महामानव युगीन घटनाओं से प्रभावित न हुआ हो और लोक पर वह प्रभाव न डाल सका हो- यह संभव नहीं है। तुलसीदास जी की रचनाएँ आधुनिक युगीन परिवेश में एक नवीन व्यंजना ध्वनित करती है।अतः उनकी रचनाओं की युगीन चुनौतियों के साथ परिवेश की पहचान अनिवार्य है। यह आलेख उसी पर आधृत है।

यह सच है कि तुलसीदास मध्यकाल के उस चौराहे पर खड़े थे, जहाँ एक ओर से निर्गुण धारा का ज्वार उमड़ रहा था।दूसरी ओर से जगन्नाथपुरी से लेकर द्वारिकापुरी तक कृष्णभक्ति की प्रबल भावधारा प्रवाहित हो रही थी।तीसरी ओर से कनफटे योगियों की अलख-अलख की दूरध्वनि सुनाई पड़ रही थी।चौथी प्रबल धारा इस्लामी आक्रांताओं की थी। इतना ही नहीं स्वयं हिंदू धर्मावलंबी असंख्य संप्रदाय, पंथ के सहारे अलग-अलग सुर अलाप रहे थे। तुलसीदास ने इस युगीन वैषम्यों को खुलकर देखा,सोचा,चिंतन किया और परंपरा की ऐसी व्यवस्था और वर्तमान की पीड़ादायी भावभूमि पर अवस्थित होकर महाकवि ने अपनी लेखनी उठाई थी, जिससे लोक को एक नवीन दिशा और दृष्टि मिली।गोस्वामी तुलसीदास ने युग-युगीन श्रीराम के अलौकिक चरित को लोक के धरातल पर इस युगीन रूपकात्मकता के साथ चित्रित किया कि वह जन-जन के मानस में उतर आया। उनका यही श्रीरामचरितमानस युग-युगीन महाकाव्यात्मक चेतना के साथ रामकालीन,मध्यकालीन और वर्तमानकालिक भारत को एक साथ रूपायित करता है।

'उनकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जीवन साधना और संघर्ष का पर्याय हो गया था। चित्रकूट के आध्यात्मिक वातावरण ने उन्हें प्रभावित किया। अयोध्या में उनके जीवन-दर्शन में क्रांतिकारी ऐतिहासिक परिवर्तन हुआ। काशी में युग की यथार्थता का बोध हुआ। यहाँ लोक का सही संघर्ष और जीवन की पीड़ा का सही ज्ञान हुआ। काशी में लोकनिंदा और कूटनीति के प्रबल प्रहार से वे तिलमिला उठते हैं,परंतु पथ से पलायन नहीं करते। पथ पर अकेले चलकर युग

8 रामचरितमानस : 1.31.2
9 द्विवेदी, हजारीप्रसाद : हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 98

का सामना करते हैं। सच तो यह है कि तुलसीदास एक ऐसे लोक का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जो भारतवर्ष की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना पुनरुज्जीवित कर, न केवल आक्रांताओं को, वरन् आक्रांताओं के पिछलग्गू भारतविरोधियों को प्रत्युत्तर देने में सक्षम हो सके।वे श्रीरामचरितमानस के आधार पर एक साथ भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक आधार को एकता प्रदान कर युग-युगीन भावबोध जाग्रत करना चाहते थे और हुआ भी वैसा ही।ऐसा प्रतीत होता है कि 'तुलसीदास उस विशाल बटवृक्ष के समान हो गए थे, जिनकी लटों में असली मूल खोज लेना सरल नहीं था। संघर्ष के विशाल वटवृक्ष के नीचे सारे पाखंड कुकुरमुत्ते की तरह अल्पायु हो गए। वही बटवृक्ष बाद में कल्पवृक्ष हो गया।'

यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य है कि उन्होंने आक्रांताओं से जूझने की अपेक्षा लोक की सामाजिक-सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने की प्रतिज्ञा की।उन्होंने देखा कि स्वर्णिम भारत पारस्परिक एकता के अभाव में ही पराधीन हो गया है।इन्हें सुमति-रूपी संजीवनी की आवश्यकता है।यही कारण है कि उन्होंने अपने श्रीरामचरितमानस में स्पष्ट घोषणा की -

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥[10]

लोकदृष्टि से यह मानस की केंद्रीय चौपाई है।हम जानते हैं की मानस की मूल कथा मूलतः तीन राज्यों से संबद्ध है- अयोध्या, किष्किंधा और लंका से। तुलसीदास जी इन तीन राज परिवारों के माध्यम से तीन समाजों (नर, वानर और राक्षस) का वर्णन कर रहे हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से तीन राज्यों में दो भाइयों का संघर्ष चल रहा था। लंका में रावण और विभीषण का तामसी मतभेद था तो किष्किंधा में बालि और सुग्रीव का राजसी बैर तथा अयोध्या में राम और भरत के बीच सात्विक प्रेम संघर्ष। लंकाधिपति रावण ने विभीषण पर प्रहार किया तो बालि ने सुग्रीव का राज्य-निष्कासन। दोनों राज्यों में अंत तक कुमति बनी रही। फलतः रावण और बालि का विनाश हो गया। परंतु लाख कुमंत्रणाओं के बाद भी श्रीराम और श्रीभरत का प्रेम नहीं मिट पाया और दोनों में अंतपर्यंत सुमति बनी रही।

अंतर यही था कि लंका में पाद प्रहार हो रहा था और किष्किंधा में पद की लड़ाई चल रही थी तथा अयोध्या के भरत जी पादुका के लिए परेशान थे। ईर्ष्या की अग्नि में धधकती अयोध्या के महलों की संपूर्ण राजकीय व्यवस्था ऐसे भरत की सुमति संजीवनी से शांत हो गई। भरत जी अयोध्या के राजसिंहासन को सिर पर लेकर चित्रकूट तक दौड़े चले आए और श्रीराम के पद में अपने राजपद को समर्पित कर दिया। और श्रीराम विहीन अयोध्या का परित्याग कर नंदीग्राम में चौदह वर्षों तक सुमति की साधना की। सुमति की इसी भावधारा में भरत जी की साधना भूमि पर रामराज्य की स्थापना हुई। यही हेतु है कि अयोध्याकांड में ऐसा प्रतीत होता है कि इस कांड का नायक श्रीभरत ही हैं। यह है गोस्वामी तुलसीदास की मानस में सुमति-साधना और लोकचेतना।

मेरी दृष्टि में लोकनायक तुलसीदास ने लोक में छिन्न-भिन्न होते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप को सुमति संजीवनी से पुनरुज्जीवित किया और संपूर्ण लोक इस सुमति गंगा में अवगाहन कर कृतार्थ हो गया। 'मानस' का लोकतात्त्विक दृष्टि से विश्लेषण करने पर उसका एक ही संदेश है कि लोकजीवन में सुमति का संचार हो जाए तो परिवार, समाज, राष्ट्र सभी का सर्वविध कल्याण संभव है। कुमति की कल्मषता ने ही भारतराष्ट्र को शताब्दियों तक परतंत्रता

10 रामचरितमानस : 5.40.6

दी। जब सुमति की धारा प्रवाहित हुई तो राष्ट्रजीवन आह्लादित हो उठा।लोकमंगल की दृष्टि से यह तथ्य तब (रामकालीन और मध्यकालीन भारत) भी सच था और आज भी सच है। यही ही लोकनायक महाकवि के मानस का लोकमंगल-विधान।

यह आश्चर्य का विषय है कि मानस में सुंदरकांड में सुमति की स्थापना के लिए राष्ट्रधर्मी सन्त विभीषण अपने राष्ट्रद्रोही (जिसने लंका का सर्वनाश कर दिया) भाई रावण के सम्मुख लंका के कल्याण के लिए सुमति का मंत्र उद्घोषित करते हुए कहते हैं-

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥[11]

अर्थात् विभीषण जी रावण से विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि और कुबुद्धि सबके हृदय में रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है,वहाँ नाना प्रकार की संपदाएँ रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

उपर्युक्त प्रसंग की व्यंजना यह है कि जब संपूर्ण लोक आततायी विश्वद्:खदायी रावण के आतंक से त्राहि-त्राहि कर रहा हो, तब लोकनायक सन्त का यह दायित्व है कि वह उसके कल्याण के लिए युग को उद्बोधित, उत्प्रेरित और उत्साहित करे। लोकनायक तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस के माध्यम से लोकचेतना को ऊर्जस्वित करने के लिए ऐसा ही किया है।

यही हेतु है कि जब अयोध्या में कुमति की चिंगारी फूटी तो लोककल्याण के लिए श्रीराम ने सहर्ष भाई भरत के लिए राजसिंहासन का परित्याग कर दिया और वन की ओर चल पड़े। उन्हें विश्वामित्र के आश्रम में संपूर्ण भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति की गाथा मुनियों ने बतायी थी। उन्होंने देखा कि आतंक सम्राट् रावण की सेना का आधिपत्य अयोध्या की सीमा तक हो गया है। लोकजीवन आततायी रावण के अत्याचार से त्राहि-त्राहि कर रहा है।ऐसे आततायियों को विनाश कर भारत में सुमति की स्थापना अनिवार्य है। इसीलिए वे कहते हैं-

जौं न जाऊँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥[12]

तुलसीदास जी कहते हैं कि वे वन की ओर ऐसे हार्दिक आनंद से प्रस्थान करते हैं, जैसे नए पकड़े गए हाथी काँटेदार लोहे की बेड़ी से बंधनमुक्त होकर वन जा रहा हो-

छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥[13]

इस दृष्टि से श्रीराम के पूर्व चरित में विश्वामित्र के साथ चलने और उत्तर चरित के वनगमन की समीक्षा करने पर लोकतात्त्विक दृष्टि से सर्वथा एक नवीन भावबोध का उदय होता है। विद्वान् मानते हैं कि लोककल्याण के लिए मानस के श्रीराम के श्रीचरण पूर्व चरित से उत्तर चरितपर्यंत अनवरत रूप में गतिशील और प्रयत्नशील हैं- राजमहल से राजपथ, राजपथ से लोकपथ, लोकपथ से वनपथ, वनपथ से गिरिपथ, गिरिपथ से उदधिपथ आदि, आदि...।

लोककल्याण के लिए शास्त्र के साथ शस्त्र की अत्यंत अनिवार्यता होती है।शास्त्र से सुमति की स्थापना की जाती है और शस्त्र से लोकविरुद्ध कुमति का निवारण होता है। यानी सकारात्मक शक्तियाँ शास्त्र से बलवत्तर होती है और नकारात्मक शक्तियाँ शस्त्र से हीनतर होती है। वेद-पुराण का भी मत है कि

11 रामचरितमानस : 5.40.5-6
12 रामचरितमानस : 2.42.2
13 रामचरितमानस : 2.51 दोहा

श्रीरामावतार धर्म की स्थापना और राक्षसों के विनाश के लिए होता है। ये दोनों कार्य शास्त्र और शस्त्र के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। यहाँ शास्त्र का तात्पर्य है बुद्धि, विवेक, ज्ञान-विज्ञान, सदाचार और संस्कार पूर्ण जीवन, जिसका एकमात्र उद्देश्य समष्टि का कल्याण यानी अखिल लोक का कल्याण करना है। शस्त्र का तात्पर्य है तन-बल, मन-बल, धन-बल और जन-बल से परिपूर्ण जीवन, जो किसी भी लोकद्रोही आसुरी शक्तियों के विनाश के लिए सक्षम हो।

श्रीराम की यात्रा संपूर्ण लोक के कल्याण के लिए होती है। श्रीराम की प्रथम यात्रा मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए होती है। वहाँ इसके बाधक तत्त्व असुर समुदाय की जननी ताड़का का वध करके ये संदेश देते हैं कि ऐसी असुर शक्तियों के मूल स्रोत को मिटा देना अनिवार्य है। तत्पश्चात् पाषाण को प्राण प्रदान कर अहल्या से हल्या (हल से उत्पन्न होने वाली) सीता तक की यात्रा करते हैं। जनकपुर में भवचाप को भंग कर सकल मदांध राजाओं को लोकहित करने का संदेश देते हुए विदेह की व्यथा को दूर कर वैदेही से पाणिग्रहण करते हैं। इस सभी घटनाओं के मूल में लोककल्याण ही है।

इसी प्रकार अयोध्या का परित्याग कर श्रीराम के श्रीचरण वनमार्ग पर सतत गतिशील हैं। श्रीराम का यह मार्ग त्याग का है,परार्थ का है और परम पुरुषार्थ का है। इस वनमार्ग पर श्रीराम के प्रभाव से एक नूतन लोक-संस्कृति का पथ विनिर्मित होता है। एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक-लौकिक चेतना विकसित होती है कि गंगा-तट का केवट भी निहाल हो जाता है। राष्ट्रपुरुष श्रीराम के स्वभाव को देखकर उसके जीवन के सारे अभाव मिट जाते हैं और वह हृदय से परितृप्त होकर कहता है-

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥[14]

लोक कल्याण के लिए वनपथ पर चलते हुए श्रीराम की यह पहली जीवन गाथा है, जिससे गंगातट का केवट दोष, दुःख और दारिद्र्य की भवव्यथा को पार कर गया।

वनपथ पर चलते हुए श्रीराम गृद्ध जटायु को गले लगाते हैं, भीलनी शबरी के जूठे बेर खाते हैं, वानरों को प्रिय सखा बनाते हैं और विश्वदुःखदायी रावण के विनाश के लिए दहाड़ते समुद्र पर सेतु तैयार करते हैं और पदयात्रा करते हुए लंका पहुँचते हैं। श्रीराम के श्रीचरण अयोध्या से लंका तक अनवरत चलते रहते हैं। यह पदयात्रा न थकी, न रुकी, न ठहरी, न हहरी। उपर्युक्त वर्णित तथ्यों की पुष्टि राज्याभिषेक के पश्चात् वेद की स्तुति से होती है। वहाँ वेद श्रीराम के चरणचिह्नों- ध्वज, वज्र, अंकुश और कमल के साथ चौदह वर्षों तक जंगल में पदयात्रा के क्रम में काँटे चुभ-चुभ जाने से जो घट्टे (किन) पड़ गए हैं, ऐसे श्रीचरणों की वंदना करते हैं-

ध्वज कुलिस अंकुश कंज जुत
बन फिरत कंटक किन लहै॥[15]

गोस्वामी जी की ऐसी लोकतात्त्विक दृष्टि सचमुच में विरल है। इससे उनके वनगमन का निहितार्थ स्पष्ट होता है और लोककल्याण की सम्यक् दृष्टि सिद्ध होती है।

श्रीराम की इस वनयात्रा से जंगल में लोकमंगल के संगीत मुखरित होने लगे। श्रीभरत रामसखा को देखकर स्यंदन त्याग देते हैं। कुलगुरु वसिष्ठ निषादराज से मिलते हैं, सीता जी के अपहरण के पश्चात् पक्षी तक युग के रावण से युद्ध करता है। वानर-समाज समुद्र पर सेतु तैयार करता है और राक्षसों से युद्ध करता है। इस प्रकार चौदह वर्षों तक श्रीराम की

14 रामचरितमानस : 2.102.5

15 रामचरितमानस : 7.13 छंद

पदयात्रा से वन में लोकभक्ति की ऐसी भागीरथी प्रवाहित हुई कि संपूर्ण युग निहाल हो गया और श्रीराम की ममता से समता का ऐसा संसार बना कि नर-वानर ने एकीकृत होकर आततायी रावण की विलास नगरी स्वर्णपुरी लंका को भस्मीभूत कर दिया।युगों की कल्मषता प्रक्षालित हो गई और भरत जी की साधना-भूमि पर रामराज्य की स्थापना हुई और संपूर्ण भुवन में यह अमृतध्वनि गुंजायमान होने लगी-

सब नर करहिं परस्पर प्रीति।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥[15क]

यही है लोकनायक तुलसीदास जी की लोकतात्त्विक दृष्टि।

ऊपर के प्रसंग से यह स्पष्ट है की लोक में रामराज्य की स्थापना के लिए एक लोकपुरुष को किन-किन मार्गों का अनुसरण करना पड़ता है और एक-एक पग के साथ अपने कुशल दायित्व का निर्वहण करना पड़ता है। इस प्रसंग में श्रीराम के सबसे निकट और आत्मीय कौन हैं- पति परित्यक्ता अहल्या, अयोध्या और जनकपुर के सामान्य नागरिक, वनपथ पर मिलने वाले ग्रामीण, आदिवासी, वनवासी, केवट, शबरी, वंदर-भालू, गीध जटायु और किष्किंधा के हनुमान् आदि।

विद्वान् मानते हैं कि 'यहाँ श्रीराम व्यक्ति चरित्र न होकर, समाज-नायक हैं, लोकनायक हैं, जिनके माध्यम से तुलसीदास जी आज के लोक के यथार्थ का प्रक्षेपण करना चाहते हैं'। भारत का लोकमानस तुलसीदास के केवट, निषादराज, शबरी से अभिव्यक्त होता है, सम्राट् से नहीं। यह सर्वविदित है कि तुलसीदास के श्रीराम राजा कम और वनवासी ज्यादा हैं। तुलसीदास के श्रीराम का पूरा जीवन जंगलों, नदियों, पहाड़ों, वनवासियों, वानरों, भालुओं, पक्षियों के बीच में बीतता है। वन उन्हें सिंहासन से प्रिय है। इतिहास में यह पहली घटना थी कि पिता के संकेत से और विमाता के आदेश से एक राजकुमार राजगद्दी का परित्याग कर जंगल ऐसे जाते हैं-

राजीवलोचन राम चले तजि
बाप को राज बटाऊँ की नाई।

तुलसीदास जी बार-बार कहते हैं कि शब्द-अर्थ वही सार्थक है जो सीताराम के लिए है और तुलसीदास के नायक वही राम हो सकते हैं, जिन्हें खिन्न और दीन-दुःखी प्रिय हैं-

जिन्हहि परम प्रिय खिन्न। [16]

तुलसीदास उन्हें बार-बार दीनदयालु, दीनानाथ, दीनबंधु आदि कहकर गौरवान्वित होते हैं।उनकी विनय-पत्रिका में इस भाव के असंख्य पद हैं। विस्तरभयात् विनयपत्रिका का एक पद उद्धृत कर इस विषय को यहाँ विराम देना अपेक्षित है-

संबल निसंबल को, सखा असहाय को॥
भाग है अभागेहू को, गुन गुनहीन को।
गाहक गरीब को, दयालु दानि दीन को॥
कुल अकुलीन को, सुन्यो है बेद साखि है।
पाँगुरे को हाथ-पाँय, आँधरे को आँखि है॥
माय-बाप भूखे को, अधार निराधार को।[17]

अर्थात् तुलसीदास के श्रीराम (और उनके नाम) जिनके दीनबंधु हैं, वे निस्संबल, असहाय, अभागे, गुणहीन, गरीब, दीन, अकुलीन, पंगु, अंधे, भूखे और निराधार हैं। तुलसीदास जी के काव्य में सर्वत्र ऐसे भाव भरे पड़े हैं।

15क. रामचरितमानस : 7.21.2,6
16 रामचरितमानस : 1.18 दोहा
17 विनय-पत्रिका : 69

इसके साथ एक बात और ध्यातव्य है कि तुलसीदास लोक के उपेक्षितों को अपेक्षित सम्मान देते हैं, परंतु अपेक्षितों को उपेक्षित नहीं करते। उन्हें भी यथोचित सम्मान देते हैं। श्रीराम की इस पदयात्रा का दूसरा बड़ा पक्ष लोकधर्मी ऋषि-मुनियों का है।दो लोकधर्मी ऋषि वसिष्ठ और विश्वामित्र की असाधारण भूमिका को कौन नहीं जानता। राक्षसी वृत्ति से संत्रस्त विश्वामित्र जब उसके समूल विनाश के लिए श्रीराम की याचना करने आए तो ऋषि वसिष्ठ ने उनकी भरपूर सहायता की। श्रीराम के व्यक्तित्व की असाधारण दिव्यता से दोनों ब्रह्मर्षि परिचित थे।विश्वामित्र के आश्रम में न केवल श्रीराम को दिव्यास्त्र मिले, वरन् उन्हें संपूर्ण आर्यावर्त की तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान भी प्राप्त हुआ। श्रीराम इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे की वनयात्रा करते हैं।जंगलों में प्रत्येक ऋषि-मुनियों के आश्रम में जाते हैं। उन्हें नमन निवेदित करते हैं और उनसे आसुरी आतंक की गाथा सुनकर दयार्द्र हो उठते हैं। ऋषियों की हड्डियों से बने पहाड़ को देखकर वे संपूर्ण असुर साम्राज्य को समूल विनष्ट करने की प्रतिज्ञा करते हैं। ऋषि भारद्वाज उनका मार्गदर्शन करते हैं, आदिकवि वाल्मीकि उनका दिशानिर्देशन करते हैं और महर्षि अगस्त्य के आश्रम में उन्हें रावण सहित समस्त असुरों के विनाश का महामंत्र प्राप्त होता है। यहाँ श्रीराम ने उनसे पूछा-

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही।
जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही॥[18]

ये सभी लोकधर्मी ऋषि थे, जिन्होंने लोककल्याण के लिए लोकपुरुष श्रीराम को शास्त्र और शस्त्र से परिपूर्ण किया। और आगे की यात्रा में यही उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ। दंडकारण्य में अकेले श्रीराम ने चौदह हजार आततायी राक्षसों का विनाश किया। यह रावण के लिए एक चुनौती थी। स्पष्ट है कि इस यात्रा में वन के सभी प्राणी उनके साथ थे,तो उनके साथ आरण्यक ऋषि-मुनियों का दिव्य वरदान भी उस पथ के लिए महनीय पाथेय सिद्ध हुआ। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह संदर्भ अत्यंत प्रासंगिक है।

इसी प्रकार मानस का लोकयोद्धा जटायु स्वार्थवृत्ति का नहीं, परार्थ और पुरुषार्थवृत्ति का प्राणी है। वह अनीति, विकृति और दुष्कृति के विरोध में युद्धरत होकर प्राणोत्सर्ग करने में अपना सौभाग्य मानता है।वह मानवेतर प्राणी होते हुए भी अपने सत्कर्म, दिव्यकर्म और पुण्यकर्म के कारण राघवेंद्र श्रीराम का अनन्य हो जाता है।लोकशक्ति की रक्षा के लिए सन्नद्ध अरण्य का वह चिरायु जटायु गिद्ध किसी भी ऋषि-मुनि और सिद्ध से बढ़कर है।

लोकयोद्धा जटायु और रामदूत हनुमान् के अप्रतिम शौर्य, धैर्य और पराक्रम की प्रेरणा से लोक में ऐसी लहर चली की संपूर्ण वनप्रदेश लोकोद्धार की प्रबल भावना की भागीरथी में अवगाहन करने लगा। असंख्य वीर वानर, भालू, रीछ आदि आततायी लोकद्रोही रावण के सर्वनाश के लिए श्रीराम के नेतृत्व में सैन्य संगठन बनाकर युद्धरत हो गए। अंततः ये विजयी हुए।

रामकथावृत्त में श्रीहनुमान् का व्यक्तित्व बल, बुद्धि और पुरुषार्थ का संगम तीर्थ है। हनुमान् श्रद्धा, संकल्प और सामर्थ्य के पर्याय हैं।वे अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए अप्रतिम पराक्रम करते हुए थकते नहीं हैं। इन सभी के मूल में कारण है कि उनका चरित्र विनयशील, वैराग्यशील, सत्यशील और निरभिमानी है। रामदूत हनुमान् के ये सारे गुण किसी भी लोकसेवी, लोकप्रेमी, लोकधर्मी और लोकभक्त के लिए उत्प्रेरक और उद्बोधक सिद्ध होते हैं। उनके ये गुण आज भी हम

18 रामचरितमानस : 3.13.3

सभी के लिए आत्मविश्वास और कर्तव्यपरायणता के बोध के लिए यथेष्ट हैं। श्रीहनुमान् की चिरंजीविता इन्हीं गुणों के कारण मान्य है। वे आज भी पूजनीय, सम्माननीय, आदरणीय और अनुकरणीय हैं।

भारतीय संस्कृति में षोडश संस्कारों का विधान है। गोस्वामी तुलसीदास ने इन संस्कारों के वर्णन में लोकाचार और लोकपद्धति का भी सहारा लिया है। जन्म, नामकरण, चूड़ाकरण संस्कार लोकरीति के अनुसार वर्णित किए गए हैं। विशेषतः मानसेतर काव्य गीतावली में रामजन्म के अवसर पर नारियों द्वारा कलश, ध्वज, तोरण, फल-फूल, दूब, रोली आदि से मंगलाचार एवं सोहिलो गान, वाद्य-वादन, घंटा-घंटी, पखावज, झाँझ, करताल, डफ, बाँसुरी आदि वाद्य यंत्रों के माध्यम से मधुर संगीत के वर्णन मिलते हैं। यथा-

सहेली सुनु सोहिलो रे!
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज।
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुल-राज॥[19]

इसी प्रकार राम की छठी के अवसर पर घर, आँगन,अटारी,बाजार और गलियों में मनोहर चौक पूरे गए हैं। पताका, मंडप, तोरणादि की शोभा मनभावन हैं-

घर-घर अवध बधावने मंगल साज-समाज।[20]

यहाँ शिशु राम को नजर लगने पर उनके दूध नहीं पीने, अनमने रहने, निरंतर रोने के कारण पितरों के पूजन, तुलादान तथा झाड़-फूँक के वर्णन के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास जी ने लोक के पारंपरिक नियमों को स्थान दिया है।इसी प्रकार बालक्रीडा के रूप में गलियों में लट्टू, चकडोरी, गोली आदि लोकजीवन के सामान्य खेलों का वर्णन किया गया है। उनके वस्त्रादि में लाल चौतनी, टोपी आदि हैं।इसी प्रकार विवाह संस्कार के वर्णन में लोकपद्धति के निर्वहण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शिव-पार्वती-विवाह और राम-जानकी-विवाह में लोकप्रचलित विधियों का वर्णन किया गया है। इस विवाह में सभी लोकरीतियों शाखोच्चार, जल-कुश लेकर कन्यादान, लावाविधान, सिंदूरदान, ग्रंथिबंधन, कोहबर, लहकौरि, बर-बधू का जुआ खेलना आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यहाँ नाऊ, बारी,भट, नट आदि को न्योछावर दी जाती है। भगवान श्रीराम का विवाह मिथिला में हो रहा हैं तो वहाँ के खान-पान में दही-चूड़ा तक का उल्लेख गोस्वामी जी ने किया है-

दधि चिउरा उपहार अपारा।
भरि भरि काँवरि चले कहारा॥[21]

श्रीरामचरितमानस, गीतावली, पार्वतीमंगल और जानकीमंगल आदि में वैवाहिक लौकिक रीतियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदास मात्र वैदिक पद्धतियों के ही नहीं, वरन लौकिक पद्धतियों में भी निष्णात थे। गोस्वामी जी ने इन ग्रंथों में लोकाचार का विस्तारपूर्वक ऐसा वर्णन प्रस्तुत किया है कि उसपर एक विस्तृत ग्रंथ तैयार किया जा सकता है। विस्तारभयात् यहाँ कुछ संदर्भ ही दिए गए हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रत्येक प्रसंग में लोकप्रचलित रीतियों, पद्धतियों को यथास्थान वर्णित कर उसकी महत्ता स्थापित की है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि युगद्रष्टा महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने मानवता के कल्याण के लिए लोकधर्म की प्रतिष्ठा की है। विद्वान् मानते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास ने अवतार-भावना द्वारा, अर्थात् अवतार-पुरुष राम के नाम-रूप-गुण और लीला द्वारा, लोक-चेतना को उत्कर्ष के उस स्तर पर पहुँचाना चाहा है जहाँ भोग और योग, लोक और

19 गीतावली : बालकांड, 2
20 गीतावली : बालकाण्ड,5
21 रामचरितमानस : 1.305.6

परलोक, यथार्थ और परमार्थ की समरस स्थिति जीवन में सहज रूप से उपलब्ध हो जाती है। यह सच है कि अवतार-पुरुष राम की भागवत उपस्थिति और मानवीय स्तर पर किए गए उनके कर्म लोकमंगल के शाश्वत विधान हैं। श्रीराम के शक्ति, शील और सौंदर्य से जन-जन प्रभावित और संस्कारित होता है। यही हेतु है कि उनका रामराज्य आज भी लोकतांत्रिक पद्धति के आदर्श राज्य का मूल प्रतिमान है। एतदर्थ लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास का श्रीरामचरितमानस लोकतात्त्विक दृष्टि से आज भी प्रासंगिक है।

"मिथक, पुराण और लोकवार्ता" का शेष अंश पृ. 10 से

वाचिक परम्परा

जो लोकगाथाएँ पुराण बन गई, लिखित रूप में आ गई, लोकजीवन में उनकी वाचिक परम्परा समाप्त नहीं हुई। 'महाभारत' को लेकर अपरिमित परिनिष्ठित साहित्य रचा गया है, परन्तु वाचिक परम्परा मे विभिन्न जनपदीय-बोलियों और प्रादेशिक-भाषाओं में आज भी वह गाया जाता है। भरतपुर-क्षेत्र के मुस्लिम लोकगायक महाभारत के 'कड़ू' गाते हैं। पंडवानी महाभारत की गाथा का ही रूप है, जिसमें भीम का चरित्र तो उज्ज्वल है, जबकि युधिष्ठिर को जुआरी और विलासी के रूप में चित्रित किया गया है। कीचकवध जैसी गाथाएँ 'देवी जागरण' में गायी जाती हैं।

कायाकल्प

पुराणकथा जितनी बार कही सुनी जाती है, उनती ही बार उसका कायाकल्प होता है और पुराणयुवती बनी रहती है। जब वे लोकगाथा चलती हैं, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में, एक जनपद से दूसरे जनपद में, एक वर्ग से दूसरे वर्ग में, लोक से शास्त्र में तब उनमें कुछ न कुछ तो परिवर्तन हर बार होता ही है! समय जब परिवर्तन की मांग करता है, तब इन प्राचीन मिथकों में ही नए अर्थों की सृष्टि हो जाती है। ये मिथक पुराने चोले को बदलकर नए गुणों को धारण कर लेते हैं। उनके चरित्र और प्रयोजन बदल जाते हैं। लोक से शास्त्र और शास्त्र से लोक की निरन्तर-प्रक्रिया में लोकगाथा में ऐसे भी परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे उन गाथाओं की अन्तर्वस्तु भी बदल जाती है, शैली और शिल्प भी! नये-नये अर्थ भर जाते हैं! पात्र वे ही रहते हैं किन्तु उनके चरित्र बदल जाते हैं! वैदिक साहित्य का इन्द्र वह नहीं है, जिसका सिंहासन हिल जाता है, जो विलासी है और अप्सराओं से घिरा है।

***

लोकगीतों में कालिदास की शकुन्तला

श्री संजय गोस्वामी

लेखन के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख। संप्रति : हिमालय व हिंदुस्तान के संरक्षक सदस्य, ग्रामीण विकास संदेश, सोसाइटी ऑफ बायोलॉजिकल साइंस एंड रूरल डेवलपमेंट के सह संपादक, तथा विज्ञान गंगा पत्रिका,(बीएचयू)., सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई- 94, ई मेल - sr44000791@gmail.com

लेखक श्री संजय गोस्वामी राजस्थानी लोकगीतों का सर्वेक्षण कर उनका संकलन-अध्ययन करनेवाले शोधकर्ता हैं। उन्होंने राजस्थानी लोकगीतों में पाया है कि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई तथा उपदेश के जो श्लोक हैं वे आज आज भी लोकगीतों में वहाँ हैं। यहाँ दो बातें हो सकतीं है कि या तो कालिदास ने जो भाव लिए हैं वे लोक के पर्यवेक्षण से प्रस्फुटित हैं अथवा लोकगीत कालिदास के भावों पर आधारित हैं। तीसरी स्थिति की कल्पना करना करना शायद सबसे अधिक उपयुक्त होगा कि सम्पूर्ण भारत में बंटी की विदाई तथा उन्हें दिये जाने वाले उपदेश शाश्वत तथा सार्वभौम हैं। हमें विश्वास है कि इस आलेख से संस्कृत-कवियों के भावों को लोक में अन्वेषण करने की उत्सुकता बढ़ेगी।

लोकगीतों में लोक हृदय की आशा-अभिलाषा, चाव-उमंग एवं दुःख-दर्द आदि सभी कुछ परिलक्षित होता है। लोक गीतों के अधिकार क्षेत्र में भी लोक-हृदय बनता है। उनके द्वारा संस्कृत भाषा में 3 नाटकों की रचना की गई है । ये नाटक निम्नलिखित हैं

1 अभिज्ञान शाकुंतलम्

अभिज्ञान शाकुंतलम् दुष्यंत और शकुंतला की प्रेम कथा पर आधारित कालिदास द्वारा लिखा गया सर्वोत्कृष्ट नाटक है इस नाटक में 7 अंक है और इस नाटक की भाषा शैली और पटकथा अत्यंत मनोहारी है।

2 मालविकाग्निमित्रम्

शुंग वंश के राजा अग्निमित्र और मालविका की प्रेम कथा पर आधारित यह कालिदास द्वारा लिखा गया अत्यंत सुंदर नाटक है।

3 विक्रमोर्वशीयम्

राजा पुरुरवा और उर्वशी की प्रेम कथा पर आधारित यह कालिदास द्वारा लिखी गई तीसरा नाटक है। उपमा अलंकार कालिदास को अत्यंत प्रिय कालिदास को कविकुलचूड़ामणि भी कहा जाता है ।

एक बार राजा दुष्यन्त अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुन्तला ने ही राजा

दुष्यंत का आतिथ्य सत्कार किया। उसी अवसर पर दोनों में प्रेम और फिर गंधर्व विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर आए, तब यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी। समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'भरत' रखा गया। कहते हैं, 'भारत' नाम 'भरत' के नाम पर ही पड़ा।

कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर दुष्यन्त के दरबार में पहुँची। परन्तु शकुन्तला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था। राजा ने इसे बिल्कुल नहीं पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु इसी अवसर पर एक आकाशवाणी हुई, जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुन्तला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अनेक मार्मिक प्रसंगों को उल्लेख किया गया है। एक उस समय, जब दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रथम मिलन होता है। दूसरा उस समय, जब कण्व शकुन्तला को अपने आश्रम से पतिगृह के लिए विदा करते हैं। उस समय तो स्वयं ऋषि कहते हैं कि मेरे जैसे ऋषि को अपनी पालिता कन्या में यह मोह है तो जिनकी औरस पुत्रियाँ पतिगृह के लिए विदा होती हैं उस समय उनकी क्या स्थिति होती होगी। तीसरा प्रसंग है, शकुन्तला का दुष्यन्त की सभा में उपस्थित होना और दुष्यन्त को उसको पहचानने से इनकार करना। चौथा प्रसंग है उस समय का, जब मछुआरे को प्राप्त दुष्यन्त के नाम वाली अंगूठी उसको दिखाई जाती है। और पांचवां प्रसंग मारीचि महर्षि के आश्रम में दुष्यन्त-शकुन्तला के मिलन का। ये जनसाधारण के सुख दुःख के अकृत्रिम उद्गार हैं।

महाकवि कालिदास प्रणीत "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" नाटक विश्व-विख्यात है। इस नाटक के चौथे अंक में पारिवारिक जीवन का एक अत्यन्त सुकोमल प्रसंग चित्रित है। यही प्रसंग विविध लोक गीतों में भी अनेकशः वर्णित है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् महाकवि कालिदास का विश्वविख्यात नाटक है जिसका अनुवाद प्रायः सभी विदेशी भाषाओं में हो चुका है। कालिदास की रचना अभिज्ञान शाकुंतलम् एक प्रणय गाथा है जो राजा दुष्यंत और शकुंतला की प्रेम गाथा को दर्शाता है यह कालिदास का प्रसिद्ध नाटक है इसकीकथा इस प्रकार है ऋषि विस्वामित्र की तपस्या को भंग करने के लिए मेनका नाम की अप्सरा को धरती पर भेजा जाता है उन दोनों मे प्रेम हो जाता है उनसे कन्या उत्पन्न होती है जब अप्सरा धरती से जाने लगी तो विस्वामित्र तपस्या करने चले गए उस कन्या को ऋषि जंगल मे छोड़कर चले गए तब गरुड़ों ने उसकी रक्षा की और कणव ऋषि ने इस बालिका का पोषण कीया एस कन्या का नाम शकुंतला हुआ,इसमें राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के प्रणय, विवाह, विरह, प्रत्याख्यान तथा पुनर्मिलन की एक सुन्दर कहानी है। पौराणिक कथा में दुष्यन्त को आकाशवाणी द्वारा बोध होता है पर इस नाटक में कवि ने मुद्रिका द्वारा इसका बोध कराया है। शकुंतला राजा दुष्यन्त की पत्नी थी जो भारत के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी। महाभारत में लिखा है कि शंकुतला का जन्म मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शंकुतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी, इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या

के समान पालते थे।

लोक गीत तो हैं ही प्रधानतया पारिवारिक जीवन के रस की राग। ऐसी स्थिति में महाकवि कालिदास वर्णित इस प्रसंग की लोक-गीतों में तुलना करना एक रोचक विषय है। कालिदास की शकुन्तला एक आश्रम में निवास करती है और साधारण गृहस्थ का वातावरण इससे भिन्न प्रकार का होता है। इन दोनों में स्थान-भेद और काल-भेद अवश्य है, परन्तु इनकी अन्तर्धारा लगभग समान ही है। देश काल की भिन्नता को दृष्टि में रखते हुए इस तुलनात्मक अध्ययन पर विचार करना उचित है। इस संदर्भ में एक कथात्मक लोक गीत द्रष्टव्य है-

म्हारै आंगन चिरमठडी रो रूंख, म्हांरा पिवजी, कोई समधी रै आंगण केवडो जी।
फूल्यो फूल्यो चिरमठड़ी रो रूंख, म्हारा पिवजी कोई इब गरणायो केवड़ो जी।
दोनूं समधी बैठ्या तखत बिछाय, म्हारा पिवजी कोई चोपड़-पासा ढालिया जी।
बूजै बूजै राजकंवर री माय, म्हांरा पिवजी, कोई कुछ हारयो कुण जीतियो जी।
हारयो-हारयो राजकंवर को बाप, धण गोरी, कोई कोटण समधी जीतियो जी।
हसत्यां मांयला हसती क्यूं ना हारया, म्हारा पिवजी म्हारी लाडकंवर क्यूं हारिया जी।
बुगचां मांयला कपड़ा क्यूं ना हारया म्हारा पिवजी, म्हारी सदाकंवर क्यूं हारिया जी।
थैली मांयला रिपिया क्यूं ना हारया म्हारा पिवजी, म्हारी बड़ गोतण क्यूं हारिया जी।
हस्ती देस्यां राजकँवर की दात, धण गोरी कोई ज्यूं घर सौव्है आपणो जी।
गहणां देस्यां बडगोतण की दात, धण गोरी कोई ज्यूं घर सोव्है आपणो जी.....
उठ बाई सीता, पैर पटोलो, कर गंढ जोड़ो, थारा बापूजी बचनाँ हारिया जी।
पाली पोसी प्यायो काचो दूध, म्हारा पिवजी, कोई आयो समधी ले गयो जी।
राजकँवर छी सात भायां री भैण, म्हारा पिवजी, म्हारो जिवड़ो कायर हो रैया जी।
तू धण इतरी कायर मतना होय, म्हारी गोरी, कोई होती आई संसार में जी।
पहली हारयो थारो जी बाप, धण गोरी, कोई पाछै म्हे भी हारिया जी।

इसमें एक कथा के रूप में सगाई से लेकर विवाह तथा विदाई तक पुत्री के माता-पिता का हृदय-द्रावक वार्तालाप है। इस गीत में माता के हृदय की वेदना टपक पड़ती है और वह सजह ही महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् के निम्न श्लोक का स्मरण करवा देती है-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठःस्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्॥
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥ (4/8)

आज शकुन्तला जाएगी, इस कारण मेरा हृदय अन्यमनस्कता (दुःख) से परिपूर्ण हो रहा है। अश्रुओं को बहने से रोकने के कारण गला रुँध गया है। दृष्टि विरहजन्य चिन्ता के कारण जड़ (निश्चेष्ट) हो गयी है। मुझ वनवासी को ही इस प्रसंग पर इतनी पीड़ा अनुभव हो रही है तो भला गृहस्थजन पुत्री के वियोग में कितने दुःखित होते होंगे? यही वेदना लोक गीत की इस एक पंक्ति में बह चली है-

"म्हारो जिवडो कायर होय रैयो जी।"

अन्त में यह कहकर बेटी की माँ को धीरज दिया गया है कि समय पर पुत्री को ससुराल भेजना तो सदा की परम्परा है। वह स्वयं किसी घर की पुत्री है, और पत्नी के रूप में आई है। अब इस घर में पुत्रवधू भी लाई जाएगी। महाकवि कालिदास ने भी इसी परम्परा की ओर संकेत किया है-

यही बात लोकगीत की अन्तिम पंक्ति में पुत्री का पिता अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए कहा है। लोकगीत मेहन्दी, कन्या-जीवन की एक सरल झांकी सी दिखलाता है-

मैंदी निपजै मालवै, आई अमर कोट, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
रतन कचोलै ओलस्यां, मांय गंगा जल नीर, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
दो बायां दो बैनडियां, दो भोजायां रो साथ, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
औ लो काकोसा विलावणो, कर लीन्यो दिन चार, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
औ बामीसा हाल रौ, हिलाय दीनौ दिन च्यार, मैंदी म्हे बाई रे लाल।
औ लो साथणियाँ चोवटौ, हंस खेल्या दिन च्यार मैंदी म्हे वाई रे लाल।

गीत का उत्तर भाग बड़ा मार्मिक है। स्थान एवं स्वजनों के मोह का बन्धन बड़ा मजबूत होता है। उसे सहज ही नहीं छोड़ा जा सकता है। यही वेदना इस लोकगीत में ओतप्रोत है। विदा लेती हुई बेटी के उपर्युक्त वचन भिन्न वातावरण में स्थित कालीदास की तपोवन में निवास करने वाली शकुन्तला के उपर्युक्त वचनों में वही मनोवेदना व्याप्त है, जो एक साधारण गृहस्थ की विदा लेती हुई बेटी के वचनों में इस गीत में समाई हुई है-

ओवरा ऊपर सूवटो जी बोल्यो
घण कतवारी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।
रोट्या तो पोवन्ती माता बाई री बोली
बाट्या री जीमांणी घटे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।
भैस्यां तो इवन्ता भाभा बाई रा बोल्या,
पाडा री पकडाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।

आज शकुन्तला जाएगी, इस कारण मेरा हृदय अन्यमनस्कता (दुःख) से परिपूर्ण हो रहा है। अश्रुओं को बहने से रोकने के कारण गला रुँध गया है। दृष्टि विरहजन्य चिन्ता के कारण जड़ (निश्चेष्ट) हो गयी है। मुझ वनवासी को ही इस प्रसंग पर इतनी पीड़ा अनुभव हो रही है तो भला गृहस्थजन पुत्री के वियोग में कितने दुःखित होते होंगे? यही वेदना लोक गीत की इस एक पंक्ति में बह चली है-

"म्हारो जिवडो कायर होय रैयो जी।"

अन्त में यह कहकर बेटी की माँ को धीरज दिया गया है कि समय पर पुत्री को ससुराल भेजना तो सदा की परम्परा है। वह स्वयं किसी घर की पुत्री है, और पत्नी के रूप में आई है। अब इस घर में पुत्रवधू भी लाई जाएगी। महाकवि कालिदास ने भी इसी परम्परा की ओर संकेत किया है-

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि॥ (4/9)

इसी तरह-

'अर्थो हि कन्या परकीय एव' (4/24) अर्थात् कन्या वस्तुतः पराया धन ही है। यही बात लोकगीत की अन्तिम पंक्ति में पुत्री का पिता अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए कहा है। लोकगीत मेहन्दी, कन्या-जीवन की एक सरल झांकी सी दिखलाता है-

मैंदी निपजै मालवै, आई अमर कोट, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
रतन कचोलै ओलस्यां, मांय गंगा जल नीर, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
दो बायां दो बैनडियां, दो भोजायां रो साथ, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
औ लो काकोसा विलावणो, कर लीन्यो दिन चार, मैंदी म्हे वाई रे लाल।
औ बामीसा हाल रौ, हिलाय दीनौ दिन च्यार, मैंदी म्हे बाई रे लाल।
औ लो साथणियाँ चोवटौ, हंस खेल्या दिन च्यार मैंदी म्हे वाई रे लाल।

गीत का उत्तर भाग बड़ा मार्मिक है। स्थान एवं स्वजनों के मोह का बन्धन बड़ा मजबूत होता है। उसे सहज ही नहीं छोड़ा जा सकता है। यही वेदना इस लोकगीत में ओतप्रोत है। विदा लेती हुई बेटी के उपर्युक्त वचन भिन्न वातावरण में स्थित कालीदास की

शकुन्तला के निम्न वाक्य सहज ही याद दिला देते हैं-

1. तात। लताभगिनीं तावत् माधवीमामन्त्रयिष्ये।

2. लताभगिनी। प्रत्यालिताभगिनी। प्रत्याङ्गं मां शाखामयैर्बाहुभिः। अद्य प्रभृति दूखत्रिनो खलु ते भविष्यामि॥

3. तात। एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भभारमन्दरा मृगवधूर्यदा सुखप्रसवा भविष्यति, तदा मेऽपि प्रियनिवेदकं विसर्ज्जयिष्यसि, मा इदं विस्मरिष्यसि।

(पिताजी! यह पर्णकुटी के समीप विचरण करने वाली, गर्भ के भार से मन्द-मन्द चलने वाली हरिणी जब सकुशल प्रसव कर ले, तब इस प्रिय समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजिएगा। इस बात को भूलिएगा नहीं।)

4. वत्स! किं मां सहवास परित्यागिनीमनुबध्नासि,ननुअचिरप्रसूतोपरतया जनन्या विना मया वद्रिधुतोऽसि, तथा इदानीमपिमया विरहितं तातस्त्वां चिन्तयिष्यति। तन्निवर्तस्व।

(पुत्र! मुझे साथ छोड़कर जाने वाली के पीछे क्यों आ रहे हो? जन्म देने के कुछ ही देर बात मृत हुई माता के बिना तुम जैसे मेरे द्वारा पाले गये हो उसी तरह अब भी मुझसे वियुक्त हुए तुमको पिताजी पालेंगे। अतः अब लौट जाओ।)

तपोवन में निवास करने वाली शकुन्तला के उपर्युक्त वचनों में वही मनोवेदना व्याप्त है, जो एक साधारण गृहस्थ की विदा लेती हुई बेटी के वचनों में इस गीत में समाई हुई है-

ओवरा ऊपर सूवटो जी बोल्यो
घण कतवारी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।

रोट्या तो पोवन्ती माता बाई री बोली
बाट्या री जीमांणी घटे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।
भैस्यां तो इवन्ता भाभा बाई रा बोल्या,
पाडा री पकडाणी घरे चाली, म्हारी माय,
बाग बन में सूवटो जी बोल्यो।
डूगरिया रै तूं नीचो झुक जाय,
चढ़ते ओ जंवाया री दीखै पचरंग पागड़ी म्हारा राज।
सूरज राजा मोडो मोडो ऊग,
चढते ओ जंवाया नैं होसी स्वामी तावडो जी म्हारा राज।

इस गीत में पुत्री की ससुराल यात्रा सुखमय होने की कामना प्रकट की गई है, अत इसमें मानव हृदय प्रकृति के साथ एक प्राण बन गया है। गीत में व्यक्त भावों को अभिज्ञान शाकुन्तलम् के निम्न श्लोकों में सहज ही द्रष्टव्य है-

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्क मरीचितापः।
भूयात् कुशेशयरजो मृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः॥ (4/12)

कमलिनियों से हरे-भरे जलाशयों से मार्ग का मध्य भाग रमणीक हो, घनी छाया वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप रोक दिया गया हो जावें, इस प्रकार इसका (शकुन्तला) का मार्ग कमलों के पराग से कोमल-धूलि के कणों से युक्त, शान्त और अनुकूल पवन से युक्त तथा कल्याणकारी होवें।

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवास बन्धुभिः।
परभृतविरूतं कल यतः प्रतिवचनीकृतमेभिरात्मनः। (4/13)

इस शकुन्तला को इसके वनवास के बन्धु वृक्षों ने जाने की अनुमति दे दी, क्योंकि सुन्दर कोयल के शब्द (कूक) को इन्होंने इस प्रकार अपना प्रत्युतर बनाया है।

पति-पत्नी ऊँट पर चढ़कर आगे बढ़ रहे है। तब पत्नी ओल्यूँ गीत गाती है-

करला मारूजी, पाछा जी म्होड़, मारूजी, ओल्यूडी तो आवै म्हारै जलवलजामी बाप की राज,करला गोरी धण, म्होड़या ए न जाय,गोरी ए, बाबोजी भरोसै सुसरो जी थारा मानल्यो जी राज।करला मारूजी, पाछा जी म्होड़,मारूजी, ओल्यूडी तो आवै म्हारी रातादेई माय की जी राज।

करला गोरी धण, म्होऽचा ए न जाय,गोरी ए, मायड़ रै भरोसै सासूजी थारा मानल्यो जी राल।

करला मारूजी, पाछा जी म्होड़,मारूजी, ओल्यूंड़ी तो आवे म्हारै कान्हकवर सै बीर की जी राज, करला गोरी धण, म्होऽचा ए न जाय, गोरी ए बीरां रै भरोसै जेठजी थारा मानल्यो जी राज।

करला मारूजी, पाछा तो म्होड़ मारूजी, ओल्यूंड़ी तो आवै म्हारी राई रूकमण भांवजां जी राज। करला गोरी धण, म्होऽचा ए न जाय,गोरी ए भाभी रै भरोसे जिठानी धारा मानल्यो जी राज।

पत्नी अपने पीहर वालों को याद करके ऊँट वापिस लौटाने के लिए कहती है। परन्तु ऐसा किया जाना उचित नहीं है। अत:पति उसे समुचित शिक्षा देता है। यही शिक्षा अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दूसरे रूप में दी गयी है-

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ (4/20)

पति के घर पहुंचकर गुरुजनों की सेवा करना, सपत्नियों के साथ सदैव प्रियसखी जैसा व्यवहार करना, अपने सेवकों के प्रति अत्यन्त उदार रहना और भोगों को पाकर कभी भी अभिमान मत करना। इस प्रकार का आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी के पद को प्राप्त कर लेती है तथा इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ घर वालों को दु:ख उत्पन्न करने वाली ही होती है। राजस्थान लोकगीत और इस श्लोक में एक ही बात दो प्रकार से कही गयी है और वह गृहिणी पद प्राप्त करने के लिए उपयोगी है।

राजस्थान के प्रत्येक मांगलिक अवसर पर बधावा गीत अनिवार्यत: गाए जाते है। इनमें सुखी तथा समृद्ध गृहस्थ जीवन का चित्रण मिलता है। पुत्री को ससुराल के लिए विदा करके लौटते समय महिलाएँ निम्न बधावा गीत गाती है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है।

पहलै बधावे ए सैयो मोरी म्हे गया राज
गया म्हारै बाबाजी री पोल मोरी सैयो ए,
चढ़ती बाई नैं ए सूण भला होया राज।
लाड-जंवाई नैं ए सूण भला होया राज
बाबोजी संतोव्या ए सैयो मोरी आपणा राज,
दीनी म्हानैं मंडपी छवाय मारी सैयो ए,
चढ़ती बाई नैं ए सूण भला होया राज।
लाड-जंवाई नें ए सूण भला होया राज।
दूजै बधावै एव सेयो मोरी म्हे गया राज
गया म्हारै ताऊजी री पोल मारी सैंयो ए,
चढ़ती बाई ने सूण भला होया राज
ताऊजी संतोव्या ए सैयो मोरी आपणा राज सातवै बधावे ए सैयो मोरी म्हे गया राज,
गया म्हारै मारूजी री सेज मोरी सैयो ए,
चढ़ती बाई नैं ए सूण भला होया राज।
मारूजी संतोख्या (संतोरव्या) ए सैयो मोरी आपणा राज, दीन्यो म्हानै सरब सुहाग मोरी सैयो ए।

एक घर की सुकन्या दूसरे घर में कुलवधू के रूप में अपने गुणों के कारण सम्मानित होती है। इस प्रकार वह दो कुलों को प्रकाशमान करके आदर्श गृहिणीपद प्राप्त करती है। नारी जीवन की यही सुन्दर सफलता इस गीत में प्रकट हुई है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में यही भावधारा दूसरे रूप में प्रकाशित हुई है जो द्रष्टव्य है-

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे

विभवगुरुभिः कृत्यैरस्य प्रतिक्षणमाकुला।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से! शुचं गणयिष्यसि। (4/21)

तुम उत्तम कुल में उत्पन्न स्वामी की आदरणीया गृहिणी बनकर, उसके अपार वैभव के कारण महत्त्वपूर्ण कार्यो में प्रतिक्षण व्यस्त रहती हुई और शीघ्र ही जिस तरह पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार तुम एक पवित्र चक्रवती पुत्र को जन्य देकर मेरे वियोगजन्य शोक को नहीं गिनोगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि आश्रमनिवासिनी शकुन्तला की विदाई का वर्णन करके समय महाकवि कालिदास अपने समय के सामान्य जन-जीवन से भी पूर्णतया प्रभावित हुए हैं और यही कारण है कि उनकी रचना का यह अंश इतना अधिक मार्मिक बन पड़ा है।

संदर्भ :

01. राजस्थानी लोकगीत : वाचिक परंपरा से प्राप्त।
02. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्।
03. लेखक द्वारा किया गया लोक सर्वेक्षण।

***

राजस्थान में लोकदेवी की अवधारणा का शेष अंश पृ. 47 से

दिया जाता है। लोक के पाँच प्रमुख जनों (पांचजन्य) की साख रहती है और पहरा रखा जाता है। यह 'जवारा जागण' (जवांकुर जागरण) इसी अर्थ में है।

कृषि की यह बहुत पुरानी विधि थी। देवीपुराण सूत्र धारण किए हैं। फिर, स्वीकृत और प्रचलन को किसी शास्त्र के प्रमाण का दर्पण क्या दिखाना! ब्रह्मशंभु, सोमशंभु, ईशान शिवगुरुदेव, राघव भट्ट आदि ने बीज वपन की क्या क्या विधियाँ और कैसे कैसे दी हैं? पद्धतियों में मूलत: लोकाचार वैसे ही मिलते हैं जैसे लोक प्रचलन में सविश्वास फले थे।

शास्त्र पाठी को यह लोकप्रथा बड़ा ही नया अर्थ देती है लेकिन वास्तव में वह पुराना और विस्मृत पर्याय है। क्या आपके आसपास भी ऐसी कोई स्मृति आचरण में बची हुई है? लोक के आचार बहुत पुरातन होते हैं और उनका विकास श्लोक रूप में भी होता आया है।

उदयपुर जिले के सांगवा गांव के धर्मराज के देवरे में ओरी गई पाती यानी नोरता थरपी गई। अमावस को ही बीज बो दिए गए। पाती जब देव मूर्ति से सिर से प्याले में गिर जाती है तो मनोरथ के शुभाशुभ पर विचार होता है।

***

श्रीरामकथा के अल्पज्ञात दुर्लभ प्रसंग

ऋचीक मुनि और पुत्र शुन:शेप का वृत्तान्त

डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता
'मानसश्री, मानस शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं विद्यासागर
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.)

शुन:शेप की कथा ऐतरेय ब्राह्मण 32वें अध्याय में हरिश्चन्द्रोपाख्यान में भी आया हुआ है। वहाँ उसे अजीगर्त का मँझला पुत्र कहा गया है तथा उस कथा के अनुसार अजीगर्त ने वरुण यज्ञ में हरिश्चन्द्र के पुत्र के स्थान पर बध्यपशु बनने के लिए पुत्र का विक्रय कर दिया था। इतना ही नहीं, जब उस यज्ञ में कोई ब्राह्मण राजा के आदेश के बाद भी नरबलि के लिए तैयार नहीं हुआ तब वही अजीगर्त गायों को पाकर पुत्र की बलि देने के लिए भी तैयार हो गया। अंत में राजर्षि विश्वामित्र ने उसे मन्त्र वारुण मन्त्र का उपदेश देकर उसे पाशमुक्त कराया। उसी अजीगर्त की कथा जब हम वाल्मीकि रामायण में पढ़ते हैं तो यहाँ पिता का नाम बदला हुआ है, क्रेता राजा का नाम भी परिवर्तित है। ऐतरेय ब्राह्मण में शुन:शेप वारुण यूप से बँधा है, किन्तु यहाँ विष्णु-यूप से। इस प्रकार के परिवर्तन और विकास हमें ऐतिहासिक रूप से समाज में आये परिवर्तनों का संकेत करते हैं। वैदिक कथाओं के विकास को समझने के लिए यह कथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सर्वप्रथम इस अल्पज्ञात दुर्लभ प्रसंग (आख्यान) शुन:शेप का उल्लेख ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में 7-13 -181 में मिलता है। शुन:शेप का आख्यान भारतीय साहित्य और समाज दोनों में अतिप्राचीन युग से चला आ रहा है। लौकिक साहित्य में इस आख्यान का सर्वप्रथम विवरण वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के सर्ग 61-62 में वर्णित किया गया है। इस रामायण में यह आख्यान महर्षि विश्वामित्र के आख्यान के साथ सम्बद्ध प्राप्त होता है। रामायण में महर्षि विश्वामित्र के आख्यान का विस्तृत वर्णन जनकपुरी के महाराज जनक के पुरोहित एवं महर्षि गौतम तथा अहल्या के पुत्र ऋषि शतानन्दजी द्वारा किया गया है।

महर्षि वसिष्ठ के पुत्रों के शाप देने से अयोध्या का राजा त्रिशंकु चाण्डाल बन गया था। इधर दक्षिण दिशा में कठोर तपस्या करते हुए विश्वामित्र की शरण में त्रिशंकु आया और सशरीर स्वर्ग भेजने के लिए उनसे प्रार्थना की। विश्वामित्र ने त्रिशंकु का उद्धार तो अपने तपोबल से कर दिया, किन्तु दक्षिण का प्रदेश उनकी तप साधना के लिए सन्तोषप्रद एवं निर्विघ्न नहीं रहा। अत: उन्होंने विचार किया कि वे अब दूसरी दिशा में जाकर तपस्या करेंगे।

पश्चिमायां विशालायां पुष्करेषु महात्मन:।
सुखं तपश्चरिष्याम: सुखं तद्धि तपोवनम्॥[1]

1 वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड सर्ग 61-3

विशाल पश्चिम दिशा में जो महात्मा ब्रह्माजी के तीन पुष्कर हैं उन्हींके पास रहकर वे सुखपूर्वक तपस्या करेंगे, क्योंकि वह तपोवन बहुत ही सुखदायी है।

ऐसा विचारकर महामुनि पुष्कर को चले गए और वहाँ फल-मूल का भोजन करके उग्र एवं दुर्जय तपस्यारत हो गए।

एतस्मिन्नेव काले तु अयोध्याधिर्महान्।
अम्बरीष इति ख्यातो यष्टुं समुपचक्रमे॥
तस्य वै यजमानस्य पशुमिन्द्रो जहार ह।
प्रणष्टे तु पशौ विप्रो राजानमिदमब्रवीत॥[2]

इन्हीं दिनों अयोध्या नरेश अम्बरीष एक यज्ञ की तैयारी करने लगे थे। जब वे यज्ञ में लगे थे, उस समय इन्द्र ने उनके यज्ञपशु को चुरा लिया। पशु के खो जाने पर पुरोहित ने राजा से कहा-

राजन! जो पशु यहाँ यज्ञ हेतु लाया गया था, वह आपकी दुर्नीति के कारण खो गया है। महाराज! जो राजा पशु की रक्षा नहीं करता, उसे अनेक प्रकार के दोष नष्ट कर डालते हैं। हे नरेश! जब तक इस यज्ञ का प्रारम्भ होता है, उसके पहले ही खोये हुए पशु की खोज कराकर उसे शीघ्र यहाँ ले आओ। इसका बहुत बड़ा यह प्रायश्चित है अथवा उसके प्रतिनिधिरूप से किसी पुरुष पशु को क्रय कर ले आओ। पुरोहित की यह बात सुनकर महाबुद्धिमान पुरुषश्रेष्ठ महाराज अम्बरीष ने हजारों गौओं के मूल्य पर (बदले में) खरीदने के लिए एक पुरुष पशु की खोज करना शुरू कर दिया।

शतानन्दजी ने कहा- अनेक देशों, जनपदों, नगरों, वनों तथा पवित्र आश्रमों में खोज (अन्वेषण) करते हुए राजा अम्बरीष भृगुतुंग पर्वत पहुँच गए और वहाँ उन्होंने पत्नी तथा पुत्रों के साथ बैठे हुए ऋचीक मुनि का दर्शन किया। अमित कान्तिमान् एवं महातेजस्वी राजर्षि अम्बरीष ने तपस्या से उद्दीप्त होने वाले महर्षि ऋचीक को प्रणाम किया और उन्हें प्रसन्न करके कहा-

पृष्ट्वा सर्वत्र कुशलमृचीकं तमिदं वचः।
गवां शत सहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि॥
पशोरर्थे महाभाग कृतकत्योऽस्मि भार्गव।[3]

पहले तो राजा अम्बरीष ने ऋचीक मुनि से उनकी सभी वस्तुओं के विषय में कुशल-समाचार पूछा तत्पश्चात् इस प्रकार कहा- महाभाग भृगुनन्दन! यदि आप एक लाख गौएँ लेकर अपने एक पुत्र को पशु बनाने के लिए बेचें तो मैं कृतकत्य हो जाऊँगा।

मैं सारे देशों में घूम आया किन्तु कहीं भी यज्ञोपयोगी पशु नहीं प्राप्त कर सका। अतः आप उचित मूल्य लेकर यहाँ मुझे अपने एक पुत्र को दे दीजिए। उनके ऐसा कहने पर महातेजस्वी ऋचीक बोले- राजन! मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को तो किसी भी तरह नहीं बेचूँगा, ऋचीक मुनि का यह वार्तालाप सुनकर उन पुत्रों की माता ने महाराज अम्बरीष से इस प्रकार कहा-

अविक्रयं सुतं ज्येष्ठं भगवानाह भार्गवः॥
ममापि दयितं विद्धि कनिष्ठं शुनकं प्रभो।
तस्मात् कनीयसं पुत्रं न दास्ये तव पार्थिव॥[4]

प्रभो भगवान् भार्गव कहते हैं कि ज्येष्ठ पुत्र कदापि विक्रय योग्य नहीं है परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिए कि सबसे छोटा पुत्र शुनक है, वह मुझे भी बहुत प्रिय है। अतः पृथ्वीनाथ! मैं अपना छोटा पुत्र आपको कदापि नहीं दूँगी।

नरश्रेष्ठ! प्रायः ज्येष्ठ पुत्र पिताओं को प्रिय होते हैं और छोटे पुत्र माताओं को। अतः मैं अपने कनिष्ठ (छोटे) पुत्र की अवश्य रक्षा करूँगी। श्रीराम! मुनि और उनकी पत्नी के ऐसा कहने पर मझले पुत्र शुनःशेप ने स्वयं महाराज अम्बरीष से कहा-

2 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 61-5-6
3 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 61-13/1/2
4 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 61-17-18

पिता ज्येष्ठमविक्रयं मात चाह कनीयसम्।
विक्रयं मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम्॥[5]

राजपुत्र (अम्बरीष)! पिता ने ज्येष्ठ पुत्र को और माता ने कनिष्ठ (छोटे) पुत्र को विक्रय करने के लिए अयोग्य बतलाया है। अत: मैं समझता हूँ इन दोनों की दृष्टि में मझला पुत्र ही बेचने के लिए योग्य है। अत: तुम मुझे ही ले चलो।

शतानंदजी ने वृत्तांत बताते हुए श्रीराम से कहा- ब्रह्मवादी मझले पुत्र के ऐसा कहने पर राजा अम्बरीष बड़े प्रसन्न हुए और एक करोड़ स्वर्णमुद्रा, रत्नों के ढेर तथा एक लाख गौओं के बदले शुन:शेप को लेकर अयोध्या की ओर रथ पर बैठाकर चल दिए। शतानन्दजी बोले हे नरश्रेष्ठ रघुनन्दन! महायशस्वी महाराज अम्बरीष शुन:शेप ज्येष्ठ पुष्कर में आकर ऋषियों के साथ तपस्या करते हुए अपने मामा विश्वामित्र से मिला। वह अत्यन्त आतुर-व्याकुल एवं दीन हो रहा था। उसके मुख पर विषाद छा गया था। वह वहाँ भूख-प्यास और थकान से दीन होकर मुनि की गोद में गिर पड़ा और इस प्रकार बोला-

न मेऽस्ति माता न पिता ज्ञातयो बन्धवा: कुत:॥
त्रातुर्महसि मां सौम्य धर्मेण मुनि पुगंव।[6]

सौम्य! मुनिपुगंव! न मेरे माता हैं न पिता फिर भाई-बन्धु कहाँ से हो सकते हैं। (मैं असहाय हूँ अत:) आप ही धर्म द्वारा मेरी रक्षा कीजिए।

नरश्रेष्ठ! आप सबके रक्षक तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति कराने वाले हैं। ये महाराज अम्बरीष कृतार्थ हो जायँ और मैं भी विकाररहित दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या करके स्वर्गलोक प्राप्त कर लूँ- ऐसी मुझ पर कृपा कीजिए। आप अपने निर्मल चित्त से मुझ अनाथ के नाथ (असहाय के संरक्षक) हो जायँ। जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार आप मुझे इस पापमूलक विपति से बचाइए।

शुन:शेप की यह बात सुनकर महातपस्वी विश्वामित्र उसे प्रकार से सांत्वना देकर अपने पुत्रों से इस प्रकार बोले-

बच्चों! शुभ की अभिलाषा रखने वाले पिता जिस पारलौकिक हित के उद्देश्य से पुत्रों को जन्म देते हैं उसकी पूर्ति का आज यह समय आ गया है। पुत्रों! यह बालक मुनिकुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है, तुम सब लोग अपना जीवन मात्र देकर इसका प्रिय करो। तुम सबके सब पुण्यात्मा और धर्मापरायण हो अत: राजा के यज्ञ में पशु बनकर अग्निदेव को तृप्ति प्रदान करो। इससे शुन:शेप सनाथ हो जाएगा। राजा का यज्ञ भी बिना किसी विघ्नबाधा के पूर्ण हो जाएगा, देवता भी तृप्त होंगे और तुम्हारे द्वारा मेरी आज्ञा का भी पालन हो जाएगा।

नरश्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि का यह वचन सुनकर अपने मधुच्छन्द आदि पुत्र बड़े अभिमान और अवेहलनापूर्वक इस प्रकार बोले-

कथमात्मसुतान् हित्वा त्रायसेऽन्यसुतं विभो।
अकार्यमिव पश्याम: शवमांससिव भोजने॥[7]

प्रभो! आप अपने बहुत से पुत्रों को त्यागकर दूसरे के पुत्र की रक्षा कैसे करते हो? जैसे पवित्र भोजन में कुत्ते का माँस पड़ जाए तो वह अग्राह्य हो जाता है। इसी प्रकार जहाँ अपने पुत्रों की रक्षा आवश्यक हो, वहाँ दूसरे के पुत्र की रक्षा कार्य को हम अकर्तव्य की कोटि में ही देखते हैं।

उन पुत्रों का यह कथन सुनकर मुनिवर विश्वामित्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गए तथा बोले- अरे तुम लोगों ने निर्भय होकर ऐसी बात कही है जो धर्म से रहित एवं

5 तदेव :बालकाण्ड सर्ग 61-21
6 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 62-4/1/2
7 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 62-14

निन्दनीय है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके जो यह दारुण एवं रोमांचकारी बात तुमने मुँह से निकाली है, इस अपराध के कारण तुम सब लोग भी वसिष्ठ के पुत्रों की भाँति कुत्ते का माँस खाने वाली मुष्टिक आदि जातियों में जन्म लेकर पूरे एक हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर रहोगे। इस प्रकार अपने पुत्रों को शाप देकर मुनिवर विश्वामित्र ने उस समय दु:खी शुन:शेप की निर्विघ्न रक्षा करके उससे इस प्रकार कहा-

पवित्रपाशैराबद्धो रक्तमाल्यानुलेपन:।
वैष्णवं यूपमासाद्य वाग्भिरग्निमुदाहर॥
इमे च गाथे द्वौ दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक।
अम्बरीषस्य यज्ञेऽस्मिंस्तत: सिद्धिवाप्स्यसि॥[8]

मुनिकुमार! अम्बरीष ने इस यज्ञ में जब तुम्हें कुश आदि के पवित्र पाशों से बांधकर लाल फूलों की माला और लाल चन्दन धारण करा दिया जाय, उस समय तुम विष्णुदेवता-सम्बन्धी यूप के पास जाकर वाणी द्वारा अग्नि की (इन्द्र और विष्णु की) स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओं का गान करना। इससे तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लोगे।

शुन:शेप ने एकाग्रचित्त होकर उन दोनों गाथाओं को ग्रहण किया और राजा अम्बरीष के पास जाकर उनसे शीघ्रतापूर्वक कहा- राजेन्द्र! परम बुद्धिमान अब हम दोनों शीघ्र चले। आप यज्ञ की दीक्षा लें और यज्ञकार्य सम्पूर्ण करें। ऋषिकुमार (शुन:शेप) का वह वचन सुनकर राजा अम्बरीष आलस्य छोड़कर हर्ष से उत्फुल्ल हो शीघ्रतापूर्वक यज्ञशाला में गये-

सदस्यानुमते राजा पवित्रकृत लक्ष्मणम्।
पशुं रक्ताम्बरं कृत्वा यूपे तं समबन्धयत्॥[9]

वहाँ सदस्य की अनुमति ले राजा अम्बरीष ने शुन:शेप को कुश के पवित्र पाश से बाँधकर उसे पशु लक्षण से सम्पन्न कर दिया और यज्ञपशु को लालवस्त्र पहनाकर यूप (यज्ञ के खम्बे) से बाँध दिया।

बँधे हुए मुनिपुत्र शुन:शेप ने उत्तमवाणी द्वारा इन्द्र और उपेन्द्र (विष्णु) इन दोनों देवताओं की यथावत् स्तुति की-

तत: प्रीत: सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितोषित:।
दीर्घामायुस्तदा प्रादच्छुन: शेपाय वासव:॥[10]

इस रहस्यभूत स्तुति से सन्तुष्ट होकर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। उस समय उन्होंने शुन:शेप को दीर्घायु प्रदान की।

नरश्रेष्ठ श्रीराम! राजा अम्बरीष ने भी देवराज इन्द्र की कृपा से उस यज्ञ का बहुगुण सम्पन्न उत्तम फल प्राप्त किया।

शतानंदजी बोले- पुरुषप्रवर (श्रीराम) तदनन्तर महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र ने भी पुष्कर तीर्थ में पुन: एक हजार वर्षों तक तपस्या की।

***

8 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 62-19-20
9 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 62-24
10 तदेव : बालकाण्ड सर्ग 62-26

पुस्तक-समीक्षा

नाम- **शाश्वती गीता**, श्रीमद्भगवद्गीता- गायन शैली में हिन्दी गीतों में रचित। अनुवादक- डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव। प्रकाशक- रेलवे टाइम टेबुल ऑफिस (प्रकाशन), वाराणसी। प्रथम संस्करण, 2023ई. ISBN- 978-81-964624-0-6. मूल्य- 501 रुपये।

श्रीमद्भगवद्गीता सम्पूर्ण भारत की आध्यात्मिक परम्परा को मूल रूप में जानने के लिए उत्कृष्ट ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। यद्यपि इसकी संस्कृत भाषा अत्यन्त सरल है तथापि वर्तमान लोक तक इसे पहुँचाने के लिए हिंदी भाषा का आश्रय लेना प्रासंगिक हो जाता है। तात्पर्य समझने के लिए हिन्दी गद्य भी हो सकता है लेकिन जो मूल ग्रन्थ स्वयं गीत है, उसे गीत में निबद्ध कर उसके माधुर्य को और बढ़ा देता है। गीता स्वयं एक गान है, जो उपनिषदों का स्वरूप होने के कारण स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होकर गीता बन गयी है। यह प्रभु का गान है।

डॉ. श्रीवास्तव ने इसे गीत के रूप में प्रस्तुत किया है। एक श्लोक का अनुवाद चतुष्पदी में है। प्रत्येक दो चरणों में तुकबंदी है। गाने की स्थिति बन जाती है गायन की ध्वनि उत्पन्न होती है।

अनुवादक जानते हैं कि गीता के श्लोकों में भावगम्भीरता है। बड़े बड़े दार्शनिक इसकी पृष्ठभूमि पर अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, भावाद्वैत के दार्शनिक वृक्ष उगा चुके हैं। एक-श्लोक की व्याख्या अपने अपने मत से लिख चुके हैं, जिन्हें पढ़ते समय संगीत काफूर हो जाता है, केवल शुष्क दर्शन बच जाता है। अतः इन्होंने 'जस का तस' धर दिया है। पाठकों को श्रोताओं को यह जान दिया है कि उन विशाल वृक्षों की आधारभूमि क्या है? मैं समझता हूँ यह बहुत बड़ी बात है।

एक उदाहरण देखें-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।

इन्होंने गाया है-

ना इसका शस्त्रों से कर्तन
ना कर सकता दहन अगन।

नहीं भिगो सकता है जीवन
नहीं सुखा सकता है पवन॥

यद्यपि इस अनुवाद में जल के लिए इन्होंने जीवन शब्द का प्रयोग किया है, जिसके लिए हिन्दीभाषियों को शब्दकोष देखने की आवश्यकता होगी। संस्कृत वाले तो जानते हैं। लेखक ने इस पद के नीचे ऐसे कठिन शब्दों का अर्थ दे दिए गये हैं। अध्यात्म, संगीत तथा शब्दज्ञान तीनों यहाँ उपलब्ध हैं।

गीता में कुछ श्लोक उपजाति-वंशस्थ परिवार के हैं। जैसे दूसरे तथा 11वें अध्याय में ऐसे श्लोक मिलते हैं। अर्जुन कृत विराट-स्तुति इसी प्रकार के छन्द में हैं। अनुवाद के लिए अधिक शब्दों की आवश्यकता होती है तो वहाँ छह चरणों में एक श्लोक का अनुवाद है।

अनुवादक ने हमेशा प्रयास किया है कि पाठक गीता को यथार्थ रूप में समझे। इन्होंने केवल भाषा के कारण जो खाई बन गयी थी उस पर पुल बाँधने का काम किया है। गहराई में जाने के लिए तो हमें दर्शन की गहन घाटी में उतरना ही पड़ेगा चाहे गीता को संस्कृत में पढ़े या हिन्दी में।

गीता की बहुत सारी गुत्थियों को तो इस पुस्तक की विषय-सूची ही सुलझा देती है। किस अध्याय में किन किन विषयों का विवेचन हुआ है इसका विस्तृत विवरण हमें मिल जाता है।

पुस्तक की भूमिका लिखने वालों में हमें भारतीय ज्ञान-धारा के वर्तमान प्रसिद्ध नाम मिल जाते है- डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, एवं डॉ. नीरजा माधव। इन्होंने पाण्डुलिपि अवस्था में ही पढ़कर अपना उद्गार व्यक्त किया है।

इसके कुछ अंश धर्मायण पत्रिका में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

इसके अनुवादक/कवि डॉ. कवीन्द्र नारायण श्रीवास्तव राजनीति शास्त्र के अध्येता तथा पेशा से अंतरराष्ट्रीय स्तर के पत्रकार रहे हैं। संवाद लोक तक पहुँचाने की कला में माहिर हैं। भारतीय लोकपाल योजना पर उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में इन्होंने शोध भी किया है तथा पंचायती राज में महिलाओं की स्थित पर इनका पुस्तक भी प्रकाशित है। इसके बावजूद इनका कविहृदय ज्वालामुखी की तरह फटता रहा है तो गजल और खंडकाव्य भी समाज को दे देते हैं। सनातन की आस्तिकता कभी उमड़ पड़ती है तो राम की खोज कर लेते हैं, रामगीता लिख जालते हं। इनकी एक पुस्तक श्रीगीता भी खण्डकाव्य के रूप में प्रकाशित है। राजनीति, संवादनीति, कविता तथा सनातन आस्तिकता सबको संतुलित रखते हुए डॉ. श्रीवास्तव अपनी लेखन-यात्रा पर हैं। अनेक पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों का इन्होंने सम्पादन किया है। लेखक का पूरा व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व इस शाश्वत गीता के पिछले कवर पर प्रकाशित है।

पुस्तक की साज-सज्जा अति आकर्षक है। आर्ट पेपर पर सुन्दर छपाई है तथा एक पृष्ठ पर तीन से अधिक श्लोक नहीं हैं। जहाँ पर कोई विशेष प्रसंग आरम्भ हुआ है, वहाँ बायीं ओर के पृष्ठ पर विषय-सूचक पद शीर्षक के साथ सज्जित किया गया है। कलात्मक ढ़ंग से प्रकाशित यह पुस्तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शनी में भी रखने लायक है। पुस्तक के मोल के आगे कागज और छपाई की परवाह नहीं की गयी है।

हर प्रकार से डॉ. श्रीवास्तव इस महनीय कृति के लिए धन्यवाद के पात्र हैं तथा इसके प्रकाशन से जुड़े लोगों का असीम बधाई!।

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(दिसम्बर, 2023ई.)

महावीर कैंसर संस्थान का रजत जयंती समारोह के अवसर पर भव्य आयोजन, 12 दिसम्बर, 2023ई.

मुंबई के बाद देश के दूसरे बड़े कैंसर अस्पताल महावीर कैंसर संस्थान के 25 वर्ष पूरे हो गये। मंगलवार को संस्थान का रजत जयंती समारोह मनाया गया। राज्यपाल राजेन्द्र विश्वनाथ आर्लेकर ने महावीर कैंसर संस्थान के परिसर में आयोजित रजत जयंती समारोह का दीप प्रज्वलन कर उद्घाटन किया। इस अवसर पर राज्यपाल ने महावीर कैंसर संस्थान में बिहार के पहले अत्याधुनिक जेनेटिक और मोलेक्यूलर लैब का उद्घाटन भी किया।

अपने संबोधन में राज्यपाल ने कहा कि पीड़ित मानवता की सेवा में महावीर कैंसर संस्थान का योगदान पूरी दुनिया में अनुकरणीय है। राज्यपाल ने कहा कि जिस सेवा भाव से महावीर कैंसर संस्थान में कैंसर मरीजों का इलाज होता है, वह सभी के लिए अनुकरणीय है। उन्होंने कहा कि महावीर मन्दिर धर्म को साथ लेकर समाज सेवा का अनुपम उदाहरण है। उन्होंने कहा कि रुग्ण सेवा ही परम धर्म है। महावीर कैंसर संस्थान के रजत जयंती के अवसर पर राज्यपाल ने स्मारिका 'मुस्कान' का लोकार्पण किया। इस अवसर पर विशेष रूप से उपस्थित जापान यूनिवर्सिटी के डॉ. मैको साकामोटो को राज्यपाल ने प्रतीक चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया।

इस अवसर पर महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने कहा कि महावीर मन्दिर द्वारा महावीर कैंसर संस्थान की स्थापना का निर्णय 1995 में लिया गया था। तब के अविभाजित बिहार में उस समय कोई कैंसर अस्पताल नहीं था। 12 दिसंबर 1998 को परम पावन दलाई लामा ने महावीर कैंसर संस्थान का उद्घाटन किया था। 650 बेड का यह विशिष्ट अस्पताल पूर्वी-उत्तर भारत का सबसे बड़ा कैंसर अस्पताल है। इस संस्थान में अब तक जिन महानुभावों का आगमन हुआ है उनमें तत्कालीन राष्ट्रपति श्री एपीजे अब्दुल कलाम, श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटिल, तत्कालीन उप राष्ट्रपति श्री भैरो सिंह शेखावत, तत्कालीन राज्यपाल और बाद में राष्ट्रपति हुए श्री रामनाथ कोविन्द आदि प्रमुख हैं। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि 30 दिसंबर 2005 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री एपीजे अब्दुल कलाम ने पेडिएट्रिक कैंसर वार्ड के उद्घाटन समारोह में जब उनसे कहा कि क्या अस्पताल के

जिन कैंसर पीड़ित बच्चों से वे मिले हैं, उनके निःशुल्क इलाज की घोषणा वे कर सकते हैं। इस पर आचार्य किशोर कुणाल ने 18 साल तक के सभी कैंसर पीड़ितों के निःशुल्क इलाज की घोषणा की थी। जो अनवरत जारी है। अब संस्थान द्वारा शीघ्र ही फुलवारीशरीफ में बच्चों के पृथक कैंसर संस्थान का निर्माण शुरू होगा, जिसका उद्घाटन रजत जयंती वर्ष के समापन पर होगा। यह बच्चों का पहला कैंसर अस्पताल होगा। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि मरणासन्न कैंसर मरीजों की सेवा-सुश्रुसा के लिए हॉस्पीस का संचालन 29 जुलाई 2022 से पटना के भूतनाथ रोड में किया जा रहा है। महावीर कैंसर संस्थान में मात्र सौ रुपये शुल्क पर कैंसर मरीजों को एक यूनिट ब्लड और रक्त अवयव दिया जाता है। महावीर कैंसर संस्थान समेत महावीर मन्दिर के सभी अस्पतालों में भर्ती मरीजों को निःशुल्क भोजन तीनों पहर दिया जा रहा है। इस अस्पताल में सरकारी अनुदान और सेवाभावी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध सहायता के अतिरिक्त महावीर मन्दिर के कोष से भी गरीब कैंसर मरीजों को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

कार्किनोस हेल्थकेयर के सहयोग से अत्याधुनिक जेनेटिक और मोलेक्यूलर लैब की स्थापना कार्यक्रम में महावीर कैंसर संस्थान के चिकित्सा अधीक्षक डॉ. एल बी सिंह ने कार्किनोस हेल्थकेयर के सहयोग से महावीर कैंसर संस्थान में नवस्थापित अत्याधुनिक जेनेटिक और मोलेक्यूलर लैब के विषय में जानकारी थी। उन्होंने बताया कि यह बिहार और पूर्वी-उत्तर भारत का पहला ऐसा लैब है। इससे अत्याधुनिक मोलेक्यूलर डायग्नोस्टिक की पहुंच बिहार और पूर्वी-उत्तर राज्यों के लोगों की होगी। इस सेवा से नेक्स्ट जेनरेशन सिक्वेंसिंग जैसी अत्याधुनिक पद्धतियों का लाभ कैंसर रोगियों के उपचार में होगा।

महावीर कार्किनोस एडवांस्ड सेंटर फॉर कैंसर डायग्नोस्टिक एंड रिसर्च केन्द्र के रूप में इसे महावीर कैंसर संस्थान के तृतीय तल पर स्थापित किया गया। रजत जयंती समारोह के अवसर पर महावीर कैंसर संस्थान की चिकित्सा निदेशक डॉ मनीषा सिंह ने आगत अतिथियों का स्वागत किया। उन्होंने बताया कि बोन मैरो ट्रांसप्लांट की सुविधा पिछले साल से उपलब्ध है। चिकित्सा-शिक्षा के क्षेत्र में भी महावीर कैंसर संस्थान महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। यहाँ रेडिएशन ऑन्कोलॉजी, सर्जिकल ऑन्कोलॉजी और गाइनी ऑन्कोलॉजी में डीएनबी के अतिरिक्त हेड एड नेक में फेलोशिप की पढ़ाई हो रही है। अस्पताल के निदेशक प्रशासन डॉ. बी सान्याल ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस अवसर पर जस्टिस पी. के. सिन्हा, पूर्व सैन्य अधिकारी जेनरल ए. के. चौधरी, कार्किनोस हेल्थकेयर के डॉ. वेंकटरमण, पूर्व विधि सचिव वासुदेव राम, बिहार राज्य प्रदूषण नियंत्रण पर्षद के पूर्व अध्यक्ष प्रो अशोक घोष, महावीर आरोग्य संस्थान के सचिव डॉ. एस एस झा, महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक डॉ. एन पी सिंह, अपर निदेशक और पूर्व आईएएस अधिकारी रामबहादुर यादव, महावीर नेत्रालय के निदेशक डॉ. यूसी माथुर, महावीर कैंसर संस्थान की वरीय चिकित्सक डॉ. विनीता त्रिवेदी, डॉ. ऋचा चौहान, डॉ. सुबोध कुमार आदि उपस्थित थे।

महावीर मन्दिर में किशोरी जी संग कौशल्यानंदन के विवाह का भव्य आयोजन, दिनांक- 17 एवं 18 दिसम्बर, 2023ई.

जनकपुर में राजा जनक के महल में शिवधनुष भंग हो चुका है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा शिवधनुष उठा भी नहीं सके। अयोध्या के राजकुमार कौशल्या नंदन श्रीराम ने एक पल में यह कर दिखाया। हास्य-विनोद के भक्तिमय वातावरण में राम-जानकी विवाह की यह आकर्षक संगीतमय नाट्य प्रस्तुति महावीर मन्दिर में जनकपुर परंपरा के

कलाकारों द्वारा की गयी। कई दशकों से महावीर मन्दिर में श्रीराम विवाह का आयोजन होता आ रहा है।

रविवार को अगहन शुक्ल पंचमी को विवाह पंचमी के पावन अवसर पर महावीर मन्दिर के प्रथम तल पर राम विवाह की आकर्षक प्रस्तुति हुई। जनकपुर के गुरु-शिष्य परंपरा की नाट्य मंडली ने मिथिला रीति से विवाह की सभी विधियों का संगीतमय मंचन किया। इस दौरान कन्या निरीक्षण, ओढंगर, नहछू, कन्यादान, सिन्दुरदान, कोहबर समेत सभी विवाह-विधियों की आकर्षक झाँकी प्रस्तुत की गयी। इस अवसर पर महावीर मन्दिर प्रांगण में बड़ी संख्या में भक्तजन उपस्थित थे। त्रेता युग में भगवान विष्णु स्वरूप श्रीराम और माता लक्ष्मी स्वरूपा जानकी जी के विवाह की झांकी देखकर भक्तों के उल्लास का ठिकाना नहीं था। भक्तजन इतने आह्लादित दिखे मानो वे भारतीय जनमानस के आदर्श राम-सीता विवाह के हर पल को अपनी नजरों में कैद कर लेना चाहते हों। राम की भूमिका मधुबनी जिले के सोनू कुमार ने निभाई जबकि सीता की भूमिका में कृष्ण कुमार थे। नाट्यमंडली में राम पदारथ शर्मा, गणेश ठाकुर, सरोजन चौधरी, विपिन ठाकुर, देवेन्द्र पांडेय, गोपालजी मिश्रा,रोहित, श्रीधर, सुभाष पांडेय, शिवचंद्र जी विभिन्न भूमिकाओं में थे। मिथिला परंपरा के विवाह गीतों की संगीतमय प्रस्तुति ने उपस्थित भक्तों और श्रोताओं को जनकपुर सा एहसास कराया। सोमवार को राम-कलेबा का आयोजन होगा। इसमें दशरथनंदन श्रीराम पहली बार अपने ससुराल जनकपुर में भोजन करेंगे। मिथिला में यह परंपरा सदियों से चली आ रही है।

सीताराम-विवाह के दूसरे दिन का कार्यक्रम- दिनांक, 18 दिसम्बर, 2023ई.

सीताराम विवाह उत्सव के दूसरे दिन महावीर मन्दिर में राम कलेबा का आयोजन

जनकपुर में धनुष यज्ञ में शिवधनुष भंग होने के साथ ही राघव संग जनकनंदनी सीता का विवाह तय हो गया। विवाह मंडप में एक साथ राम-लक्ष्मण-भरत शत्रुघ्न सभी का विवाह हुआ। किशोरी जी समेत चारों बहनें राजा दशरथ की पुत्रवधू हो गयीं। विवाह के बाद मिथिला परंपरा के अनुसार चारों दूल्हा कोहबर में आए। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की आभा से मिथिलावासी अचंभित थे। ऐसा दिव्य पुरुष उन्होंने इससे पहले कभी नहीं देखा था। मिथिला की स्त्रियाँ गाती हैं- आज मिथिला नगरिया नेहाल सखिया, चारों दुल्हा में बड़का कमाल सखिया। महावीर मन्दिर में आयोजित दो दिवसीय श्री सीताराम विवाह उत्सव के दूसरे दिन त्रेतायुग के राम-जानकी विवाह का यह दृश्य जीवंत हो उठा। जनकपुर की गुरु-शिष्य परंपरा की नाट्य मंडली ने संगीतमय प्रस्तुति से श्रद्धालुओं को भक्तिरस से सराबोर कर दिया।

राम विवाह के बाद दूसरे दिन राम-कलेबा का आयोजन हुआ। कोहबर में मिथिला परंपरा से पहले कुलदेवता का पूजन हुआ। अब बारी थी कौड़ी के खेल की। दुल्हा राम को अपनी अर्धांगनी किशोरीजी के साथ कौड़ी खेलना था। मिथिला की लोक परंपरा में पली-बढ़ीं सीता जी कौड़ी खेलने में सहज थीं। लेकिन अवध के राघव कौड़ी क्या

जानें। किशोरीजी ने उन्हें हरा दिया। एक दिन पहले ही संसार के सभी राजा-महाराजा सूरवीरों को पराजित कर दशरथनंदन ने स्वयंवर में जिस जानकी जी को जीता था, उन्हीं से वे हार गये। मिथिला की स्त्रियाँ चुहलबाजी करते हुए गाती हैं- जुआ खेल कुंवर बड़े आज बाजी लगाइके....। इस बीच कोहबर में स्त्रियों ने राघव को मिथिला परंपरा में खूब गाली गीत सुनाया। कोहबर में हास्य-विनोद के बीच पल बीतते गये। अब वह अवसर आया जिसे देखने को देवता भी ललायित थे। संसार के पालनहार ठाकुर जी अपने ससुराल में भोजन करने बैठे। तरह-तरह के पकवान पड़ोसे गये। हलवा-पुड़ी, कचौरी, पकौड़ी-बजका, तिलौरी-दनौरी और नाना प्रकार के मिष्ठान्न समेत अनगिनत व्यंजन। रघुकुल की शान श्रीराम ने प्रेमपूर्वक भोजन किया तो मिथिलावासियों का हृदय आनंदित-पुलकित हो गया। देवगण भी भगवान की यह लीला देखकर उन्हें कोटि-कोटि नमन करने लगे। महावीर मन्दिर के प्रथम तल पर आयोजित राम-कलेबा के समापन पर सभी उपस्थित भक्तों के बीच नाना प्रकार के व्यंजनों का मिश्रित प्रसाद वितरित किया गया।नाट्यमंडली में राम पदारथ शर्मा, गणेश ठाकुर, सरोजन चौधरी, विपिन ठाकुर, देवेन्द्र पांडेय, गोपालजी मिश्रा,रोहित, श्रीधर, सुभाष पांडेय, शिवचंद्र जी विभिन्न भूमिकाओं में थे।

महावीर मन्दिर में मनायी गयी गीता जयन्ती, दि. 23 दिसम्बर, 2023ई.

गीता जीवन का गीत है। इसे सहज रूप से समझने की जरूरत है। गीता के अध्येता और विद्वान पं मार्कण्डेय शारदेय ने ये बातें महावीर मन्दिर में गीता जयंती पर आयोजित कार्यक्रम में कही। शनिवार को महावीर मन्दिर के ऊपरी तल पर स्थित मण्डप में गीता जयंती का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंडित मार्कण्डेय शारदेय, महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के संपादक पंडित भवनाथ झा समेत उपस्थित वक्ताओं ने श्रीमद्भागवतगीता पर माल्यार्पण किया। इस अवसर पर अपने संबोधन में पंडित शारदेय ने कहा कि गीता के सतत् अध्ययन से सकारात्मक चिंतन की प्रवृत्ति आती है। सफल जीवन के लिए गीता के अनुकरण और अनुशीलन की आवश्यकता है। मार्कण्डेय शारदेय ने कहा कि पूरे जनमानस को ज्ञान देने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र के धर्मयुद्ध में गीता के उपदेश दिए। अर्जुन की भी इसमें उल्लेखनीय भूमिका रही। अर्जुन के सवालों के जवाब में श्रीकृष्ण ने गीता के अनमोल उपदेश दिए। विषय प्रवेश करते हुए पं भवनाथ झा ने कहा कि अगहन शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को आज ही के दिन गीता की रचना हुई। श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन की जो सीख है, वह आज भी प्रासंगिक है। गीता का मुख्य संदेश है- धर्म जर। अर्थात् आप जो भी, जहाँ भी कर रहे हैं, धर्म का आचरण करें। अज्ञानता और मोह का परित्याग कर हम जिस क्षेत्र में, जहाँ भी रहें, धर्म का आचरण करें। पंडित भवनाथ झा ने कहा कि गीता के 700 श्लोकों में हम जीवन के जिन प्रश्नों का उत्तर चाहेंगे, मिल जाएगा। गीता हमें जीवन पद्धति सिखाती है। इस अवसर पर पंडित गजानन जोशी, पं रोहित पाठक, पं सौरभ पांडेय, पं माधव उपाध्याय, कमलाकान्त ओझा, सुरेश पी. आदि उपस्थित थे।

माता जानकी के उद्भव-स्थल, पुनौरा धाम, सीतामढ़ी

के विकास में

महावीर मन्दिर, पटना का योगदान

'सीता-रसोई' योजना

महावीर मन्दिर, पटना के द्वारा माता जानकी के उद्भव-स्थल सीतामढ़ी के पुनौरा धाम में सीता रसौई के नाम से एक योजना चल रही है। इसके अंतर्गत वहाँ सीतामढ़ी के बाहर से दर्शन के लिए आने वाले तीर्थयात्रियों को प्रतिदिन दो बार निःशुल्क भोजन उपलब्ध कराया जाता है। इस भोजन का निर्माण पुनौरा धाम मन्दिर के प्रांगण में ही अस्थायी रूप से निर्मित परिसर में शुद्ध तरीके से किया जाता है। इस कार्य में महावीर मन्दिर की ओर से नियमित कर्मचारी नियुक्त हैं, जो भोजन निर्माण से लेकर यात्रियों को भोजन कराने का कार्य निष्ठापूर्वक करते हैं।

वर्तमान में लगभग 150 व्यक्ति दिन में तथा 50 व्यक्ति रात्रि में प्रतिदिन भोजन-प्रसाद पाते हैं। इसमें चावल, दाल, सब्जी, पापड़, भुजिया तथा घी का व्यवहार होता है।

साधु-विश्रामालय एवं सीता-रसोई के लिए भवन निर्माण

वर्तमान में साधुओं को वहाँ रात्रि विश्राम के लिए समस्या होती है। उनके रात्रि विश्राम के लिए निःशुल्क व्यवस्था की अपेक्षा है, जिसकी पूर्ति के लिए महावीर मन्दिर के द्वारा भवन का निर्माण कार्य हो रहा है। निर्माण पूरा हो जाने पर इसी में सीता-रसोई के लिए स्थायी व्यवस्था भी रहोगी तथा साधु भी धार्मिक परिवेश में निःशुल्क रात्रि विश्राम कर सकेंगे।

जानकी उद्भव-स्थल पर भव्य मन्दिर का निर्माण

शास्त्रीय प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि राजा जनक के काल में जिस मिथिलापुरी की चर्चा है, वह वर्तमान में सीतामढ़ी का क्षेत्र है। वर्तमान सीतामढ़ी पुराने परगना 'मिहिला' में पड़ता है। अकबर के समय में अबुल फजल के द्वारा 'सरकार-ए-तिरहुत' के रूप में जिन 74 परगनों का समूह उल्लिखित है, उनमें से एक 'महला' परगना है। इस परगना में अकबर के समय में खेती लायक जमीन 15, 295 बीघा थी। इसी महला परगना को कनिंघम ने 'महिला' कहा है। संस्कृत परम्परा की पुस्तकों में इसे 'मिहिला' कहा गया है। यह वही 'मिहिला' शब्द है, जो 'मिथिला' का अपभ्रंश बनकर प्राकृत ग्रंथ **'विविधतीर्थकल्प'** में राजा जनक की राजधानी के रूप में उल्लिखित है। महाकवि विद्यापति ने अपने ग्रन्थ 'भूपरिक्रमण' में 'गिरिजा ग्राम' के रूप में इसका उल्लेख किया है। अतः परम्परा तथा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर सीतामढ़ी का जो पूरा क्षेत्र है, उसे माता सीता का जन्मस्थान माना जाता रहा है।

सन् 1877 ई. में Sir William Wilson Hunter ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण कर A Statistical Account of Bengal, Volume 13 में लिखा है कि पुनौरा में लगभग 50 फीट की एक मिट्टी की मूर्ति है, जिसके सिर के पास दो सर वाली एक मूर्ति है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हनुमान तथा रावण के बीच युद्ध की प्रतिकृति है। इस परिसर के महन्त इसे सीताजी का प्राकट्य-स्थल मानते हुए सारी व्यवस्था कर रहे हैं।

इस प्रकार, पुनौरा धाम में सीताजी के प्राकट्य-स्थली की परम्परा रही है। यहाँ विकास के लिए पर्याप्त स्थान हैं और वर्तमान में यह शहर से दूर रमणीय स्थल है। इसी पुनौरा धाम के जानकी कुण्ड से सीताजी का उद्भव माना जाता है। इस जानकी कुण्ड के बीच में महावीर मन्दिर के द्वारा भव्य मन्दिर का निर्माण कराया जा रहा है। इसकी योजना तैयार हो चुकी है।

व्रत-पर्व

पौष, 2080 वि. सं. (27 दिसम्बर, 2023ई. से 25 जनवरी, 2024ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा, ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. पौषकृष्ण प्रतिपदा तिथि, बुधवार दिनांक 27.12.2023 ई.

पौषमास में कोसी नदी में स्नान करने से महापुण्य फल मिलता है।

2. पौषकृष्ण तृतीया उपरि चौठ तिथि श्रीलम्बोदर चौठव्रत शनिवार दिनांक 30.12.2023

4. पौषकृष्ण एकादशी रविवार सफला एकादशी व्रत सबके लिए, दिनांक 7.1.2024

इस दिन फल भोग लगाकर एकादशी व्रत करने का विधान है। फल के साथ होने के कारण इसे सफला एकादशी की कथा मे कहा गया है कि इस दिन व्रत कर पीपलवृक्ष के निचे विष्णु के नाम से फल अर्पित करना चाहिए।

5. पौषकृष्ण त्रयोदशी प्रदोष त्रयोदशी व्रत, दशतारकारंभ, रात्रि 07:57 के बाद, **दिनांक 9.01.2024, मंगलवार**

6. पौषकृष्ण चतुर्दशी गुरुवार प्रदोष चतुर्दशी व्रत, दिनांक 10.01.2024, बुधवार

दशतारक यानि मूल नक्षत्र से अश्विनी नक्षत्र ये 10 नक्षत्र को ही दशतारक कहा गया है, इन दिनों वर्षा, गरज, आँधी, ओला गिरना, बिजली का चमकना आदि लक्षण दीखने से अगले वर्ष बरसात में अच्छी वर्षा की भविष्यवाणी की जाती है।

7. पौषकृष्ण अमावस्या गुरुवार पौषी अमावस्या, दिनांक 11.1.2024

8. पौषशुक्ल तृतीया उपरि चतुर्थी रविवार, श्रीगणेश चतुर्थी व्रत, दि. 14.1.2024

9. पौषशुक्ल सप्तमी बुधवार, गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती, दि. 17.1.2024.

10. पौषशुक्ल दशमी, कर्मदशमी, विश्वकर्मा-जयन्ती, दिनांक 20.01.2024, शनिवार

भारत में सामान्य रूप से विश्वकर्मा पूजा 17 सितम्बर को मान लिया गया है, किन्तु शास्त्रीय रूप में इस दिन पौषशुक्ल दशमी को कर्मदशमी के इन विश्वकर्मा का अवतरण माना जाता है। इस दिन विश्वकर्मा-पूजा की तरह ही पूजा करनी चाहिए।

11. पौष शुक्ल एकादशी रविवार पुत्रदा एकादशी दिनांक 21.01.2024.

इस दिन व्रत करने से सन्तान की प्राप्ति होना कहा गया है। ध्यान रहे कि संस्कृत में पुत्र शब्द का व्यवहार सामान्य लिंग अर्थात् पुत्र एवं पुत्री दोनों के लिए किया जाता है।

12. पौष पूर्णिमा गुरुवार पौषी स्नान, दान, व्रत पूर्णिमा, शाकम्भरी जयन्ती, लक्ष्मण संवत् 915 का आरम्भ, दिनांक 25.01.2024.

पौष मास की पूर्णिमा तिथि में पवित्र नदियों में प्रातः स्नान का विशेष महत्त्व है। देवी की उपासना की परम्परा में अकाल के समय शाक से लोगों का भरण-पोषण करनेवाली शाकम्भरी देवी की उत्पत्ति इसी दिन हुई थी। दुर्गासप्तशती में इनकी कथा दी गयी है। बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन ने इस संवत् का प्रारम्भ किया था। मिथिला क्षेत्र में 16वीं शती तक इसी संवत् का प्रचलन था।

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

महावीर मन्दिर द्वारा स्थापित एवं संचालित
महावीर केंसर संस्थान के रजत–जयंती समारोह का कार्यक्रम

पुनौरा धाम सीतामढ़ी में महावीर मन्दिर द्वारा निर्मित सीता–रसोई तथा साधु–विश्रामालय के लिए निर्माणाधीन भवन।

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

पुनौरा धाम सीतामढ़ी के जानकी कुण्ड में महावीर मन्दिर के द्वारा प्रस्तावित जानकी उद्‌भव मन्दिर का प्रारूप

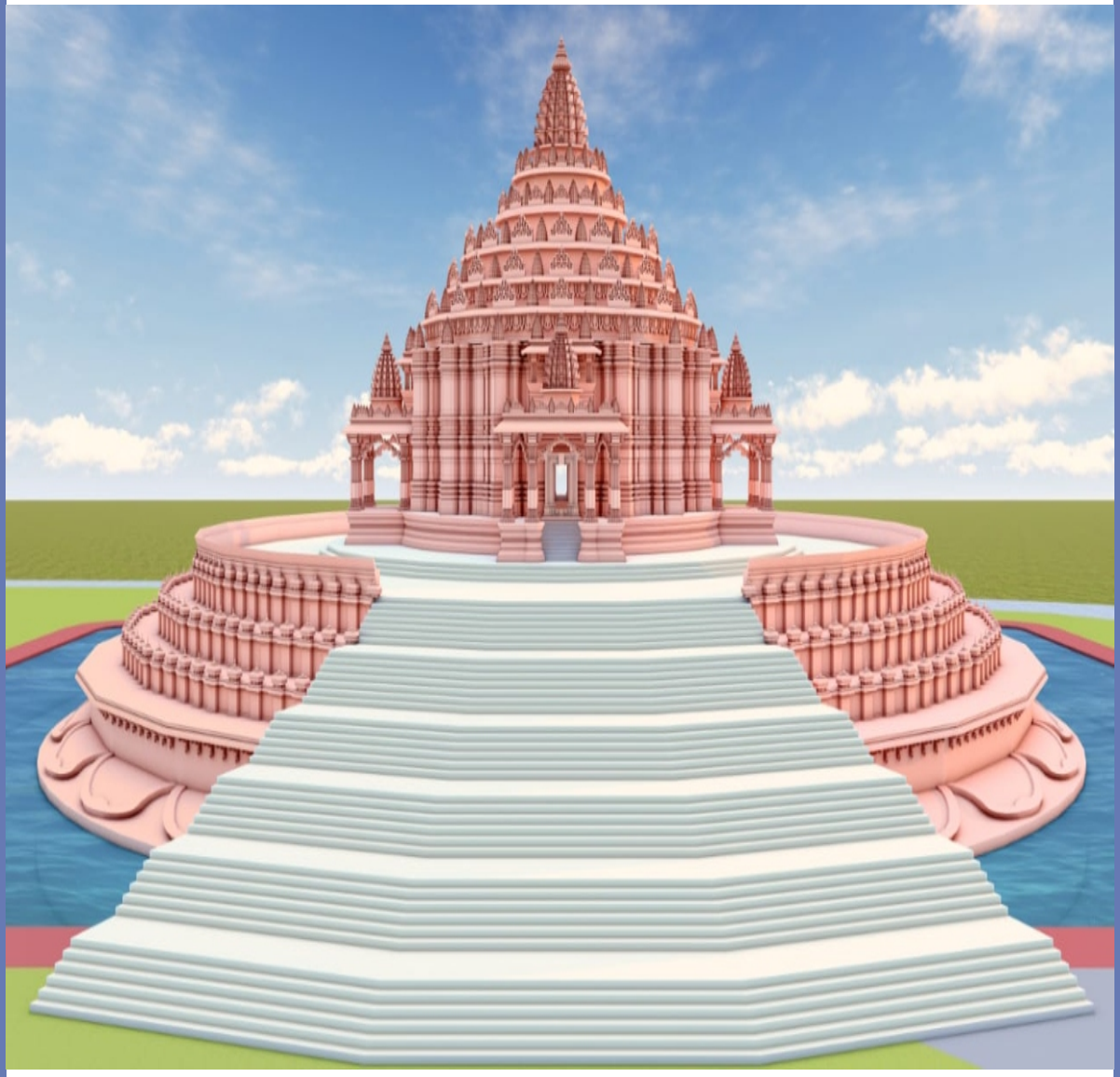

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna-org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।